‘एक और द्रोणाचार्य’ में यथार्थबोध

(‘EK AUR DRONACHARYA’ MEIN YTHARTHBODH)

A Dissertation submitted to the University of Hyderabad in partial fulfilment of the degree of

MASTER OF PHILOSOPHY

in

Hindi

by

Amit Kumar

Department of Hindi

School of Humanities

University of Hyderabad

(P.O.) Central University

Gachibowli, Hyderabad – 500 046

Telangana

India

CERTIFICATE

This is to certify that the dissertation entitled **‘एक और द्रोणाचार्य’ में यथार्थबोध (‘EK AUR DRONACHARYA’ MEIN YTHARTHBODH**) submitted by Amit Kumar bearing Reg. No 19HHHL09 in partial fulfilment of the requirements for the award of Master of Philosophy in (Hindi) is a bonafide work carried out by him under my supervision and guidance.

The thesis has not been submitted previously in part or in full to this or any other University or Institution for the award of any degree or diploma.

Signature of Supervisor

Head of the Department

Dean of the School

DECLARATION

I hereby declare that the work embodied in the present dissertation entitled "'**'एक और द्रोणाचार्य' में यथार्थबोध ('EK AUR DRONACHARYA' MEIN YTHARTHBODH)** submitted by Amit Kumar bearing Reg. No 19HHHL09" is carried out under the supervision of Prof V. Krishna, for the award of Master of Philosophy in Hindi from the University of Hyderabad, is an original work of mine and to the best of my knowledge no part of this dissertation has been submitted for the award of any research degree or diploma at any University.

I also declare that this is a bonafide research work which is free from plagiarism. I hereby agree that my dissertation can be deposited in Shodhganga/INFLIBNET.

Date: 23-06-2022 Signature of the Student

Name: Amit Kumar Regd. No. 19HHHL09

अनुक्रमणिका

	पृष्ठ संख्या
भूमिका	1-4
प्रथम अध्याय	5-21
1. शंकर शेष का व्यक्तित्व एवं कृतित्व	
1.1- जीवन परिचय	5-10
1.2 - लेखन परिचय	11-21
द्वितीय अध्याय	22-49
2. यथार्थवाद का स्वरूप	
2.1- यथार्थ शब्द की उत्पत्ति और विकास	22-29
2.2 - यथार्थ और यथार्थवाद	29-32
2.3 - यथार्थवाद की अवधारणा	32-41
2.4- साहित्य और यथार्थवाद	41-49
तृतीय अध्याय	50-108
3. 'एक और द्रोणाचार्य' में यथार्थबोध	
3.1- सामाजिक यथार्थबोध	50-71
3.2 - राजनैतिक यथार्थबोध	71-87
3.3 - आर्थिक यथार्थबोध	87-99
3.4 - सांस्कृतिक यथार्थबोध	100-107

उपसंहार 108-111

संदर्भ-सूची 112-115

1.आधार-ग्रंथ

2. संदर्भ-ग्रंथ

3. कोश

4. पत्रिका

भूमिका

साहित्य समाज का दर्पण है। यह बात अपने आप मे अधूरी-सी प्रतीत होतीहै वो इसलिए, क्योंकि दर्पण मानव की सतही तौर की जानकारी देता है। लेकिन साहित्य मे मानव की सतही तौर की अभिव्यक्ति नहीं होती है बल्कि साहित्य में मानव का समग्र चिंतन प्रस्तुत किया जाता है। साहित्य का समाज से सीधा-सीधा संबंध इसलिए होता है क्योंकि साहित्य की विषयवस्तु समाज की घटनाओं से ही निर्मित होती है। यह विषयवस्तु कल्पना पर आधारित होती है लेकिन कोरी कल्पना पर नहीं, बल्कि इस कल्पना में भी यथार्थ का पुट पाया जाता है। तभी एक पाठक अपने आपको साहित्य से जोड़ पाता है। क्योंकि साहित्य को पढ़ते समय उसे स्वंय महसूस होता है कि जिस साहित्य को मैं पढ़ रहा हूँ उसमे कुछ ऐसा है जो मेरे अनुभव से मेल खाता है। यही कारण है कि साहित्यकार के मर जाने के बाद भी उनका साहित्य जिंदा रहता है, बल्कि वह समाज को निरंतर जागरूक करने का काम भी करता है। ऐसी ही अभिव्यक्ति हमें डॉ० शंकर शेष के नाट्य साहित्य को पढ़ते समय होती है। उसका साहित्य वर्तमान की सभी विसंगतियों पर प्रहार करता नजर आता है। जब मुझे डॉ० शंकर शेष के साहित्य को पढ़ने का मौका मिला। उसे पढ़ते वक्त मुझे ऐसा महसूस हुआ जैसे मैं किसी समकालीन साहित्यकार के साहित्य को पढ़ रहा हूँ और उनके नाटकों में स्वतंत्र्योंत्तर भारत की जनता के जनजीवन की समस्याएं, यातनाएँ, राजनैतिक अव्यवस्था और रोटी, कपड़ा और मकान के लिए गिड़गिड़ा रही आम जनता के यथार्थ चित्र को देख पाता हूँ। स्वतंत्र्योंत्तर हिन्दी नाट्य साहित्य में डॉ० शंकर शेष ने अपनी नाट्य-यात्रा के दौरान अनेक विषयवस्तु पर नाटक लिखे और विभिन्न नाटकों के माध्यम से हिन्दी नाट्य परंपरा को गौरवान्वित करने का महत्वपूर्ण कार्य किया है। डॉ० शंकर शेष के मन में अनेक प्रश्न व जिज्ञासाएँ थी, जिन्हे वे अपने नाटकों के माध्यम से पाठक के सामने रखने का काम करते रहे हैं। उन्होंने अपने नाटकों में निम्न मध्यवर्ग की विभन्न यातनाएँ, स्त्री-पुरुष संबंध, जातिवाद,

शिक्षण संस्थानों का बिगड़ता स्वरूप, समाज-कानून और मानवीय करुणा का द्वंद्व, सुविधाभोगी संस्कृति, आधुनिक प्रेम संबद्धों की संकीर्णता पारिवारिक विसंगतियों आदि प्रसंगों को अपने नाटकों में अभिव्यक्त किया है। डॉ शंकर शेष के सभी नाटकों में से मुझे सबसे ज्यादा प्रभावित **'एक और द्रोणाचार्य'** नाटक ने किया क्योंकि इस नाटक ने वर्तमान शिक्षक की तुलना उस द्रोणाचार्य से की है जिससे एक शिक्षक को अपने सिद्धांतों से समझौता करने और अन्याय को सहने की परंपरा दे दी है और नाटक में शंकर शेष ने वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में व्याप्त भ्रष्टाचार, पक्षपात, राजनैतिक घुसपैठ तथा आर्थिक एवं सामाजिक दबावों के चलते निम्न मध्यवर्गीय व्यक्ति के असहाय बेबस चरित्र को दिखाया है। पौराणिक कथा के द्वारा आधुनिक समस्याएँ व विसंगतियों को अभिव्यक्त किया है और सत्ता के दबाव में आदर्शों सिद्धांतों को ताक पर रखता। आज के शिक्षक वर्ग की कहानी को डॉ शंकर शेष ने बयान की है। यह नाटक आज की शिक्षा व्यवस्था पर बहुत गंभीर सवालों को उठता नजर आता है। वह सभी सवाल वर्तमान समय में प्रासांगिक है। इसलिए मैंने *'एक और द्रोणाचार्य और यथार्थबोध'* को अपने लघु शोधकार्य का विषय बनाया है। इस शीर्षक के तहत लघु शोधकार्य करने के लिए मैंने विषय को तीन अध्यायों में विभाजित किया है और अंत में उपसंहार दिया है।

अपने लघु शोधकार्य के प्रथम अध्याय में *'डॉ० शंकर शेष के व्यक्तित्व एवं कृतित्व'* पर दृष्टि डालने का प्रयत्न किया है। इसके अंतर्गत शंकर शेष का जीवन-वृत प्रस्तुत किया गया है। उनके लगभग सभी नाटकों का परिचयात्मक अध्ययन करने का प्रयास किया गया है और उनके उपन्यासों और बाल उपन्यासों पर भी प्रकाश डालने की कोशिश की गई है। अन्य लेखन में उनके द्वारा संपादित पुस्तकों एवं अन्य कथेतर साहित्य पर चर्चा की गई है।

द्वितीय अध्याय *'यथार्थवाद का स्वरूप'* है। इस अध्याय को चार उप-अध्यायों में विभक्त किया है। पहले उप-अध्याय में यथार्थ शब्द की उत्पति और विकास पर बात की गई

है और यथार्थ शब्द के शाब्दिक अर्थ को समझने का प्रयास किया गया है। दूसरे उप-अध्याय में *'यथार्थवाद की अवधारण'* को दिखाया गया है और विद्वानों की परिभाषाओ के द्वारा यथार्थवाद की संकल्पना को समझने की कोशिश की गई है तीसरा उप- अध्याय *'यथार्थ और यथार्थवाद'* है इस अध्याय में इस दोनों के अंतर को दिखाया गया है और यह एक दूसरे के कितने पूरक व समान है उसकी तथ्यात्मक व आलोचनात्मक ढंग से व्याख्या की गई है। चौथा और आखरी उप-अध्याय *'साहित्य और यथार्थवाद'* है इस अध्याय मे साहित्य और यथार्थवाद का क्या संबंध है ? साहित्य में यथार्थवाद की शुरुआत कहाँ से होती है और वह हिन्दी साहित्य तक कैसे-कैसे पहुँच है ? और यथार्थवाद के साहित्य मे आने से साहित्य की विषय वस्तु मे कैसा परिवर्तन देखने को मिलता ? है और नाटक साहित्य में यथार्थवाद का आगमन किस रचनाकार के साहित्य में पहले देखा गया ? इस सब बातों पर विचार-विमर्श किया गया है।

तृतीय अध्याय *'एक और द्रोणाचार्य' में यथार्थबो*ध है। इस अध्याय को चार उप-अध्याय मे विभक्त किया गया है पहले *उप-अध्याय* में *सामाजिक यथार्थबोध* है इस अध्याय में एक और द्रोणाचार्य नाटक के सामाजिक यथार्थबोध को शिक्षा के क्षेत्र में नैतिकता का प्रश्न, आधुनिक शिक्षा-व्यवस्था का बिगड़ता स्वरूप, नारी के अधिकार और सामाजिक व्यवस्था, व्यक्तिवाद और समाज आदि बिन्दुओं के माध्यम से व्यक्त किया किया है। दूसरा उप-अध्याय *राजनैतिक यथार्थबोध* है। इस अध्याय में नाटक के राजनैतिक यथार्थबोध को राजनैतिक तिकड़मबाजी, राजनीति का अपराधिकरण, स्वार्थपरक एवं राजनीति और अवसरवाद, राजनीति और जनविरोध आदि प्रमुख बिंदुओं द्वारा नाटक के राजनैतिक यथार्थबोध को समझने का प्रयास किया गया। तीसरा उप-अध्याय आर्थिक यथार्थबोध है, जिसमे गरीबी, अभावग्रस्ता और जीवन, बेरोजगारी, मध्यवर्ग का अवसरवादी चरित्र आदि बिन्दुओ पर क्रमवार ढंग से चर्चा की गई है। चौथा उप-अध्याय सांस्कृतिक यथार्थबोध है। इस अध्याय

में ‘एक और द्रोणाचार्य’ नाटक के सांस्कृतिक यथार्थबोध को संयुक्त परिवारों का विघटन, नैतिकता और जातिवाद आदि बिन्दुओं पर विचार-विमर्श करके नाटक के सांस्कृतिक यथार्थबोध को अभिव्यक्त करने का प्रयास किया गया है।

सभी अध्यायों के अंत में मैंने अपने समग्र लघु शोधकार्य का मूल्यांकन के रूप में उपसंहार को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। यह मेरा विनम्र प्रयास मात्र है।

प्रस्तुत शोधकार्य मेरे शोध-निर्देशक प्रो०वी०कृष्णा के मार्गदर्शन और उनके शिक्षण बोध के बिना संभव नहीं हो पाता । हैदराबाद विश्वविधालय के हिन्दी विभाग के सभी प्राध्यापकों का आभार, जिन्होंने अपना बहुमूल्य समय देकर मुझे इस काबिल बनाया कि मैं इस शोधकार्य को करने में समर्थ हो पाया। विषय चयन में सहायता करने के लिए मेरी मित्र प्रिया का आभार। मेरे साहित्यिक रुझान को दिशा देने में भूमिका निभाने के लिए बड़े भाई डॉ रवि प्रकाश निर्मला सिंह को धन्यवाद।

माँ-पिताजी तथा बड़े भाई नवीन के संघर्ष और त्याग ने मुझे इस मुकाम तक पहुँचने की प्रेरणा दी। मुझे जीवन में आगे बढ़ने के लिए साहस व आर्थिक समर्थन देने के लिए मेरे प्रेरणा स्त्रोत बड़े भाई प्रवीण का आभार। छोटे भाई गौरव और सागर संस्कारी के सहयोग के बिना हैदराबाद विश्व विधालय में यह लघु शोध पूरा कर पाना मेरे लिए संभव नहीं था। छोटे भाइयों का आभार। जिसमे नेहा सैनी और दोस्त दीपक रोहिला व नितिन चौहान के प्यार के सहयोग की भी महत्वपूर्ण भूमिका रही है । कबिताब, सुमन, पुष्कर बंधु और याकूब का शुक्रिया जिन्होंने इस लघु शोधकार्य को पूरा करने में भरपूर सहयोग किया । हैदराबाद विश्वविधालय की लाइब्रेरी और लाइब्रेरी के कर्मचारिगणों का जिनके सहयोग से इस शोधकार्य को पूरा करने में सहायता मिली मै उनका आभारी हूँ।

पहला अध्याय

शंकर शेष का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी नाट्य साहित्य को विकासमान दिशा प्रदान करने वाले नाटककारों में शंकर शेष का अतुलनीय योगदान रहा है। यथार्थ चित्रण के लिए इतिहास पुराण का सहारा लेने वाले नाटककारों में इनका स्थान अग्रणीय है। समकालीन जीवन की ज्वलंत समस्याओं से जूझते व्यक्तियों की त्रासदी शंकर शेष के लगभग ज्यादातर नाटकों के केंद्र में रहती है समकालीन जीवन संघर्ष, आधुनिक भाव संवेदना इनके नाटकों के केंद्र में मुख्य रूप से रहा है। शंकर शेष मोहन राकेश के बाद की पीढ़ी के महत्वपूर्ण नाटककारों के रूप में जाने जाते हैं। डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल, धर्मवीर भारती, सर्वेश्रवरदयाल सक्सेना, मुद्राराक्षस, जगदीशचंद्र माथुर, विनोद रस्तोगी, दयाप्रकाश सिन्हा, ज्ञानदेव अग्निहोत्री जैसे स्वातंत्र्योत्तर युगीन प्रयोगवादी नाटककारों की श्रेणी में शंकर शेष के रंगमंचीय कार्य को गिना जाता है। किन्तु यह बात भी है कि हिंदी समीक्षकों ने प्रारम्भ में उनकी उपेक्षा भी की है। हिंदी का अपना रंगमंच निर्माण करने की लम्बी प्रकिया में शंकर शेष ने सन् 1955 से लेकर सन् 1981 तक अनवरत कार्य किया है। नागपुर, भोपाल, मुंबई जैसे महानगरों में प्रायोगिक नाट्य परंपरा स्थापित करने में डॉ शंकर शेष ने विशंकर शेष योगदान दिया है। "जयशंकर प्रसाद की तरह उन्होंने जहाँ एक ओर प्राचीन कथा बीजों के नये रूपों को प्रस्तुत किया वहीं दूसरी ओर उन्होंने समसामयिक संदर्भों, विषयों एवं विवादों को उठाकर वर्तमान जीवन की व्याख्या भी की है उनकी दृष्टि में रंगमंच निर्माण की प्रक्रिया एक संस्कार था। ऐसे संस्कार जिसकी रचना में पीढ़ी दर पीढ़ी प्रयास की आवश्यकता है"[1]।

[1] शंकर शेष रचनावली (खण्ड एक) – सं0 डॉ विनय, पृष्ठ स.13 ; प्रकशन किताबघर दरियागंज नई दिल्ली,पृष्ठ-12

1.1 जीवन-परिचय

डॉ० शंकर शेष का जन्म 2 अक्टूबर 1933 को बिलासपुर के सामंती परिवार में हुआ था। उनका पालन पोषण संयुक्त पारिवारिक व्यवस्था में पुरातन रुढ़ियों के बीच हुआ। इनके पिता का नाम *श्री नागोराव शंकर शेष* तथा माता का नाम *श्रीमती सावित्री देवी* था। "डॉ शंकर शेष की आरंभिक शिक्षा बिलासपुर से ही हुई। बिलासपुर की प्राथमिक शिक्षा से हाई स्कूल की परीक्षा उत्तीर्ण होने तक की किशोर अवस्था में ही उन्होंने कविता कहानी लिखना प्रारम्भ कर दिया था। इसे हम साहित्यिक जीवन का प्रारम्भ न कह कर केवल बीजारोपण कहेंगे, जो बाद में नागपुर जा कर पल्लवित हुआ। आरंभिक शिक्षा की इस अवस्था में उन्होंने रामायण और महाभारत की कक्षाओं में अधिक रुचि ली"[2]। "उनकी उच्च शिक्षा नागपुर एवं मुबई में हुई। नागपुर विश्वविद्यालय से सन् 1956 में उन्होंने बी० ए० ऑनर्स की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की और वही से *'हिन्दी और मराठी कथा साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन'* शीर्षक प्रबंध से 1964 में पी०एच०डी० की उपाधि पाई। सन् 1976 ई. में उन्होंने मुंबई विश्वविद्यालय से एम० ए० (लिंगग्विस्टिक) की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उतीर्ण की"[3]। इसके साथ ही वे आकाशवाणी के संपर्क में आए। आकाशवाणी के संपर्क में आने से उनके लेखन को नये आयाम प्राप्त हुए और उनका लेखकीय काम बढ़ता गया। कविता, कहानी आदि का पत्र-पत्रिकाओं में लेखन तथा आकाशवाणी के संपर्क के कारण उनके दोस्त एवं अध्यापक उन्हें महत्व देने लगे थे। डॉ शंकर शेष के लिखे रेडियो-रुपक उन दिनों चर्चा का विषय बन गए थे। उनके सामने जीविका के अनेक मार्ग होते हुये भी मध्यप्रदेश सरकार की शिक्षा में सहायक प्राध्यापक के रूप में वे भर्ती हो गए"[4]। सन् 1965 में मध्यप्रदेश सरकार ने डॉ० शंकर शेष की असाधारण क्षमता को

[2] शंकर शेष की रचनावली – सं०डॉ विनय, पृष्ठ सं.14 ; प्रकशन किताबघर दरियागंज दिल्ली

[3] एक और द्रोणाचार्य - शंकर शेष, परमेशरी प्रकाशन प्रीतविहार दिल्ली, पेपर बैंक संस्कारण -2007 (अंतिम आवरण पृष्ठ पर लेखक परिचय से)

[4] शंकर शेष की रचनावली- डॉ विनय, ,पृष्ठ सं.14 ;प्रकशन किताबघर दरियागंज दिल्ली ,पृष्ठ संख्या 14

देखकर *'शिक्षा सेवा विभाग'* से *आदिम जाति* अनुसंधान संस्था में प्रतिनियुक्ति की। उन्हें भाषा एवं संस्कृति प्रभाग में *अनुसंधान अधिकारी* का पदभार सौपा गया। अनुसंधान अधिकारी की हैसियत से डॉ० शंकर शेष ने तीन वर्ष तक काम किया। इसके बाद उन्होंने सन् 1974 से लेकर 1981 तक *भारतीय स्टेट बैंक* के मुंबई स्थित केंद्रीय कार्यालय में राजभाषा विभाग के मुख्य अधिकारी के रूप में पदभार संभाला और 28 अक्तूबर 1981 को श्रीनगर (कश्मीर) में उनका निधन हो गया।

पुरस्कार और फिल्मफेयर

सन् 1970 में *'बिन बाती के दीप'* नाटक से उनका लेखन पुनर्जीवित हुआ। सन् 1974 तक उन्होंने आठ या नौ नाटक लिखे। जिसमें *'बाढ का पानी'* और *'चन्दन के दीप'* तथा *'बंधन अपने अपने'* मध्यप्रदेश शासन द्वारा पुरस्कृत किया गया। साथ ही आकाशवाणी भोपाल से अधिकांश नाटक प्रसारित भी हुए जिसमें प्रमुख रूप से *'खजुराहों का शिल्पी'* का राष्ट्रीय प्रसारण हुआ। उनके *'मराठी शिक्षण पाठ'* जो आकाशवाणी से प्रसारित हुआ करते थे उनको भी पर्याप्त लोकप्रियता प्राप्त हुई। *'एक और द्रोणाचार्य'* का मंचन भी दर्शकों के बीच बहुत सराहा गया। मध्यप्रदेश शासन ने डॉ० शंकर शेष को *'बाढ़ का पानी'* *'चन्दन के दीप'* पर एक हजार रुपए का तथा *'बंधन अपने अपने'* पर ग्यारह सौ रुपए का पुरस्कार प्रदान किया। "डॉ० शंकर शेष के नाटकों का बंबई में बड़ा जोरदार स्वागत हुआ उनका नाटक *अनिकेत, 'घरौंदा'* के नाम से प्रकाशित हुआ। 'घरौंदा' नाटक की विषयवस्तु पर *श्रीमान भीमसेन* के निर्देशन में फिल्म बनी और *'बिन बाती के दीप'* को आधार बनाकर *घरौंदा* के निर्देशक श्री भीमसेन ने *'घुटन'* के नाम से फिल्म बनाने पर विचार किया था। डॉ० शंकर शेष के पटकथा संवाद *'दूरियाँ'* को 1979 में फिल्मफेयर पुरस्कार प्राप्त हुआ था। 'घरौंदा और

दूरियाँ' फिल्मों के लिए आशीर्वाद पुरस्कार प्राप्त हुआ। *'पोस्टर'* नाटक पर भी आर०के० विकल के निर्देशन में फिल्म बन चुकी है"[5]।

डॉ० शंकर शेष की साहित्यिक योगदान कुछ इस रूप में है।

नाटक

1. सन् 1955 "मूर्तिकार

2. सन् 1956 रत्नगर्भा

3. सन् 1956 नयी सभ्यता नई नमूने

4. सन् 1958 बेटों वाला बाप (अप्राप्त)

5. सन् 1958 तिल का ताड़

6. सन् 1958 बिना बाती के दीप

7. सन् 1968 बाढ़ का पानी

8. सन् 1969 बंधन अपने-अपने

9. सन् 1970 खजुराहों का शिल्पी

10. सन् 1971 फंदी

11. सन् 1971 एक और द्रोणाचार्य

12. सन् 1973 कालजयी (मराठी)

सन् 1973 कालजयी (हिन्दी)

13. सन् 1974 घरौंदा

14. सन् 1974 अरे! मायावी सरोवर

15. सन् 1976 रक्तबीच

16. सन् 1977 राक्षस

17. सन् 1977 पोस्टर

18. सन् 1978 चेहरे

19. सन् 1979 त्रिकोण का चौथा कोण

20. सन् 1979 कोमल गांधार

21. सन् 1981 आधी रात के बाद

[5] शंकर शेष रचनावली - पृष्ठ सं. 15,16

एकांकी

1. सन् 1957 विवाह -मंडप
2. सन् 1958 हिन्दी का भूत
3. सन् 1971 त्रिकोण का चौथा कोण
4. सन् 1979 एक प्याला कॉफी (अंग्रेजी प्ले)
5. सन् 1981 अजायबघर, पुलिया, सोपकेस

बाल नाटक

6. सन् 1973 दर्द का इलाज
7. सन् 1973 मिठाई की चोरी

अनूदित नाटक

1. सन् 1959 दूर के दीप
2. सन् 1972 एक और गाँव
3. सन् 1973 चल मेरे कद्दू ठुम्मक ठुम्मक
4. सन् 1981 पंचतंत्र और गांर्बा

उपन्यास

1. सन् 1956 तेंदू के पत्ते (अप्राप्त)
2. सन् 1971 चेतना
3. सन् 1972 खजुराहों की अलका
4. सन् 1980 धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे (अपूर्ण)

अनुसंधानात्मक प्रथम

1. सन्   1961   हिन्दी और मराठी कथा

साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन

2. सन्   1965   छतीसगढ़ी का

भाषाशात्रीय अध्ययन

3. *सन्   1967   आदिम जाति शब्द-संग्रह*

एवं भाषाशास्त्रीय अध्यन

पटकथा संवाद

1.*सन्*   *1978* घरौंदा

2.सन्   *1979*   दूरियाँ*”*[6]

[6] शंकर शेष रचनावली -सं०डॉ विनय, पृष्ठ सं.17,18,19

1.2 लेखन परिचय

डॉ० शंकर शेष साठोत्तर नाटक और रंगमंच के सशक्त हस्ताक्षर के रूप में हिन्दी साहित्य जगत में देखे जाते है और भविष्य में भी उनका ये स्थान शायद कोई ले पाए। वो इसलिए क्योंकि उन्होंने साहित्य जगत को एक अलग सामाजिक दृष्टिकोण दिया जिससे साहित्य को एक अलग पहचान मिली। उनसे पूर्व नाटक की विषय वस्तु समकालीन नाटकों की विषयवस्तु से भिन्न देखने को मिलती थी। उदाहरण के रूप में *जयशंकर प्रसाद* के नाटकों की विषयवस्तु प्राचीन विषयों पर आधारित होती थी, यहाँ मानव की समस्यों से नाटक की विषयवस्तु बहुत दूर देखने को मिलती है लेकिन स्वातन्त्र्योतर के बाद का नाटक साहित्य में मानवता की मूल समस्यों को केंद्र में रखकर लिखा गया। इस कार्य में डॉ० शंकर शेष का योगदान महत्वपूर्ण है। क्योंकि शंकर शेष की रचनाओं में भारतीय समाज के द्वंद्व और दुविधा से परिपूर्ण बिंब शंकर शेष के साहित्य में देखने को मिलता है। अर्थात उनमें एक ओर आशा का प्रकाश मौजूद है तो दूसरी और गिरते हुए मूल्यों के चटखने की ध्वनि से उभरता दिखाई देती है। डॉ० शंकर शेष ने अपने नाटकों में परंपरा को अभिव्यक्त किया है। डॉ० शंकर शेष ने जीवन की तमाम समस्याओं और विसंगतियों के साथ अपने नाट्य साहित्य को प्रस्तुत किया है। डॉ० शंकर शेष ने महानगरीय समयाओं को अपने नाटकों के कथ्य का विषय बनाया है। दूसरी और ग्रामीण जनता के साथ-साथ आदिम जातियों, शोषित वर्ग व निम्न वर्ग के लिए अपने ऐशो-आराम भरे जीवन का परित्याग कर उनकी समस्याओं का चित्रण अपने नाटक साहित्य में किया है। डॉ० शंकर शेष के नाटकों को भी मुख्यत: दो धाराओ में विभाजित किया जा सकता है। समसामयिक चिंताओं की अभिव्यक्ति और स्त्री-पुरुष संबंधों का अन्वेषण। डॉ० शंकर शेष के नाटकों में भी समसामयिक चिंता के कई धरातल है। जैसे महंगाई, भ्रष्टाचार, बेरोजगारी, जातिवाद, अवसरवाद, मानवता को अपाहिज करने वाली व्यवस्था, मनुष्य का विघटन, स्वार्थपूर्ण राजनीति, समाज से अस्पृश्यता, जाति-वर्ग भेद समाप्त

कर गांधीवादी मूल्यों की स्थापना करना, शाषको द्वारा शोषितों पर किया जा रहें अत्याचार, मूल्यहीन तथा क्षण के मोह के कारण मनुष्य का पतन को 'बिन बाती के दीप' 'फंदी' 'खजुराहों का शिल्पी, एक और द्रोणाचार्य, आदि नाटकों में किया है। स्त्री-पुरुष संबंधों को जाँचने परखने व नए परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करने का भी प्रयास डॉ शंकर शेष ने अपने *'बिन बाती के दीप'* *'मूर्तिकार'* आदि नाटकों के माध्यम से किया है।

'बिन बाती के दीप'

'बिन बाती के दीप' उनका एक सफल नाटक है। जिसमें पारिवारिक समस्यों के यथार्थ का चित्रण बखूबी चित्रण किया गया है। किन्तु जीवन की समस्याओं का आशावादी अंत एवं समाधान नाटक के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। इस नाटक में शंकर शेष ने दिखाया है कि आज का मनुष्य कितना महत्वाकांक्षी होता जा रहा है और अपने स्वार्थ कि पूर्ति हेतु वह किसी भी हद तक गिर सकता है। इस नाटक में मूल रूप से स्त्री-पुरुष संबंधों को दिखाया है आज मानवी संबंध स्वार्थ आधारित होते जा रहे है। स्त्री-पुरुष का दांपत्य संबंध आपसी प्रेम, समर्पण और विश्वास की भावना पर टिका होता है। परंतु इस नाटक में दिखाया गया है कि आज के आधुनिक युग में मनुष्य इतना महत्वाकांक्षी हो गया कि वह अपने स्वार्थ हेतु इस पवित्र रिश्ते की मर्यादा का भी उल्लंघन करता है और अपनी अंधी पत्नी को धोखा देने से भी परहेज नहीं करता। पति-पत्नी का रिश्ता समाज में बहुत ही पवित्र माना जाता है। इस नाटक में शिव ओर विशाखा दो पात्र है। विशाखा अंधी है उसका पति शिव उसके इसी अंधेपन का फायदा उठाता है। उसके लिखे उपन्यासो को अपने नाम से छपवाकर साहित्य जगत का जाना माना चेहरा बन जाता है। जबकि विशाखा इस बात से अंजान रहती है। शिव अपनी महत्वाकांक्षी में इतना अंधा है कि वह अपनी अंधी पत्नी को धोखा देने में भी नहीं हिचकिचाता और उसके अंधेपन का फायदा उठाता है वह दूसरी औरत जो कि उसकी निजी सहायक है। उसके साथ उसके नाजायज़ संबंध है।

‘मूर्तिकार’

डॉ शंकर शेष का यह पहला नाटक है। यह नाटक उन्होंने नागपुर के मेडिकल कॉलेज के विद्यार्थियों की माँग पर लिखा था। इसमें शंकर शेष जी ने काल की साधना करने वाले, सच्चे और नेकी की राह पर चलने वाले कलाकार को कितनी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है उसको बयान किया है। उनकी पत्नी ललिता उसकी हर कठिनाई में साथ देती है गलत रास्ते पर चलने वाले कलाकारों को कितनी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है उसका यह नायाब उदाहरण है। उसकी पत्नी ललिता उसकी हर कठिनाई में साथ देती है गलत चलने वाली अपनी नन्द को सहारा दे उसके जीवन को बचाती है। यह नाटक मध्यवर्गीय जीवन का दस्तावेज़ हैं। हमारे समाज में कलाकारों की उनके जीवित रहने तक कद्र नहीं की जाती मगर उनके मर जाने के बाद उसको याद किया जाता है। इस विडम्बना को मूर्तिकार के माध्यम से नाटककार बताना चाहता है। कला के प्रति समर्पित कलाकार और उसे इस अभावग्रस्त जीवन के साथ देनेवाली उसकी पत्नी इसके सामने आनेवाली कठिनाइयों का चित्रण आदि विवेचन का प्रमुख विषय है।

‘रत्नगर्भा’

पति-पत्नी के संबंधों को विषय बनाकर लिखे गए इस नाटक में पहले खूबसूरत पत्नी दुर्घटना की शिकार हो कुरूप बन जाती है, तो उसने पति में आये परिवर्तन को चित्रित किया है। इसमें पत्नी के कुरूप बनने पर पति का पत्नी को मार डालने का प्रयत्न करना तथा अपनी ही साली पर नज़र रखना तथा पेशे से डॉक्टर होकर भी अनैतिक आचरण करना आदि का चित्रण किया है। जिसके द्वारा आधुनिक समाज में मानव निरंतर मन की अपेक्षा तन की ओर

अधिक आकर्षित होने लगा है। उसकी सौंदर्यनुभूति शारीरिक सौन्दर्य तक ही सीमित हुई"[7] इस नाटक का केंद्र बिन्दु है।

'नयी सभ्यता; नये नमूने'

दुराचारियों का दमन करने वाले श्री कृष्ण के पौराणिक मिथक का प्रयोग इस नाटक में किया गया है। इसमें सज्जनता का बुरखा पहने समाजद्रोही लोगों का पर्दाफाश किया है इस नाटक के जरिया यह बताया है कि समाजद्रोहियों कि चाल किसी न किसी साजिश को लेकर ही चलती है। इस संदर्भ में डॉ सुरेश गौतम और वीणा गौतम कहते है "आज कि सभ्यता भी तो उसी को कहते है जिसमें मुस्करा- मुस्कुराकर आप किसी का गला काट लीजिए। आज यह पहचाना मुश्किल हो गया है कि किसकी मुस्कुराहट में अमृत है और किसकी मुस्कराहट में जहर"[8] इस मिथक द्वारा चरित्र के पतन कि समस्या एवं समकालीन समाज व्यवस्था का चित्रण किया है।

'तिल का ताड़'

हास्य- व्यंग्यात्मक शैली में लिखी शंकर शेष का यह पहला नाटक है कभी कभी उलझन से बचने के लिए इंसान कोई स्वांग रचते हुए तिल का ताड़ बना देता है। प्रस्तुत नाटक के जरिए शंकर शेष बताना चाहते हैं कि एक झूठ को छिपाने के लिए दूसरा झूठ बोलना पड़ता है और फिर झूठी बातों का सिलसिला ही शुरू हो जाता है जिसमें झूठ बोलने वाला आदमी ही फँस जाता है। इसका चित्रण बहुत प्रामाणिकता के साथ किया है। इस बारे में डॉ० सुनीता मंजन कहती है "नाटक का उद्देश्य मनोरंजन पैदा करना है यद्यपि नाटक की नींव आवास के अभाव कि समस्या ही है"[9]।

---

[7] नाटककार शंकर शेष - डॉ सुनील कुमार लवटे, पृष्ठ स.30

[8] राजपथ से जनपथ नट शिल्पी शंकर शेष - डॉ सुरेश गौतम डॉ वीणा गौतम,पृष्ट स.63

[9]शंकर शेष व्यक्तित्व व कृतितव्य - डॉ सुनीता मंजन बैल, पृष्ठ स.15

‘बेटोवाला बाप’

यह नाटक सन् 1958 में लिखा गया नागपुर में *घनवटे* नामक नाट्य गृह है जो सभी आधुनिक सुविधाओं से संपन्न है। इस रंगभूमि पर मंचन होना हर नाटककार के लिए गौरव की बात थी “बेटोवाला बाप का प्रथम मंचन इसी नाट्य गृह में हुआ और बहुत सराहा गया। दुर्भाग्य से यह नाटक पुस्तक या पाण्डुलिपि में उपलब्ध नहीं है श्रीमति सुधा शंकर शेष को भी वह उपलब्ध नहीं हो सका”[10]।

‘बाढ़ का पानी’

सन् 1968 में लिखे इन नाटक का प्रथम मंचन भोपाल की *‘नाट्य सुधा’* से किया इसमें हमारा समाज जातिभेद के बंधनों में किस तरह जकड़ा हुआ है यह दिखाया है। साथ ही गाँव में बारिश के कारण बाढ़ आती है और सारे गाँव में पानी भर जाता है तब अस्पृश्य लोगों के टीले पर उच्च जाति के लोगों ने सहारा लिया, उनके मन से स्पृश्य-अस्पृश्यता के बंधनों को किसी तरह बाढ़ बहा ले जाती है। इस मार्मिक बिन्दु को डॉ०शंकर शेष स्पष्ट करना चाहते है यहाँ जातीयता की समस्या को उठाकर उससे मुक्त होने के उपाय को बताकर नाटककार यही कहना चाहता है कि जातिभेद के बंधनों से मुक्ति होने पर ही मानव का कल्याण हैं।

‘बंधन अपने अपने’

इस नाटक में एक ओर आधुनिक समाज में शिक्षा क्षेत्र में फैली भ्रष्टाचार प्रवृत्ति को उजागर किया है। तो दूसरी ओर महत्वाकांक्षा की धुन में गृहस्थी से दूर रहने वाले डॉ जयंत कि खोखली महानता का पर्दाफाश किया है। जो अपनी महत्वाकांक्षा के बाद उत्पन्न हुए एकाकीपन और अकेलेपन के दुख को सह नहीं पा रहें है साथ ही यह भी बताया गया है कि

---

[10] डॉ शंकर शेष के नाटकों का अनुशीलन - डॉ मधुकर हसामनीस, पृष्ठ स.30

हर व्यक्ति की अपनी-अपनी सीमाएं होती है अपने बंधन होते है उन्ही के अनुसार व्यक्ति को अपना आचरण करना चाहिए।

'खजूराहों का शिल्पी'

सन् 1970 में लिखे इस नाटक ने डॉ शंकर शेष को नाटककार के रूप में राष्ट्रीय मंच पर लाने का महत्वपूर्ण कार्य किया गया। यह शंकर शेष का बहुचर्चित नाटक है। इस नाटक में शंकर शेष जी ने खजूराहों के मंदिरों के निर्माण में कौन-सा उद्देश्य रहा होगा इस पर अपने तर्क निष्ठता के अनुसार प्रकाश डाला है संसार में काम भावना निरंतर गतिशील भावना बनकर स्थायी रही है। लाख कोशिशों के बावजूद 'मोह का क्षण' मनुष्य जाति पर हावी रहा है जिस कारण मनुष्य को कितनी मुश्किलों का सामना करना पड़ता है कितनी ही ठोकरें खानी पड़ती है। फिर भी वह इससे बच नहीं पाता। इसका मर्मस्पर्शी चित्रण किया है।

'फँदी'

कथ्य और शिल्प कि दृष्टि से इसमें अनोखा प्रयोग किया गया हैं। आज समाज में 'इच्छा मृत्यु "यहा नया विचार प्रवाह उभर रहा हैं, इसी को नाटककार ने 'फँदी' में चित्रित किया है इसी को नाटककार ने 'फँदी' में चित्रित किया है तथा इच्छा मृत्यु योग्य या अयोग्य इस प्रश्न को उठाया है। डॉ लवते जी कहते है। नाटककार के सुदीर्घ चिंतन - मनन का परिणाम है फँदी इस में ट्रक ड्रावर फँदी अपने कैंसर से पीड़ित मौत माँगने वाले पिता को गला घोटकर मृत्यु होती है, क्या इच्छा मरण और इससे सहायता करनेवाले व्यक्ति अपराधी है ? क्या परिस्थितियों में आये बदलाव के अनुसार कानून व्यवस्था में बदलाव जरूरी नहीं ? आदि प्रश्नों को यहाँ उठाया गया हैं।

'कालजयी'

मराठी और हिन्दी दोनों भाषाओं में यह नाटक लिखा गया है यह नाटक हिन्दी रंगमंच पर अब तक खेला नहीं गया है। इस नाटक में ताजा कालजयी के अन्याय अत्याचारों से

पीड़ित जनता कालजयी के खिलाफ किस तरह आंदोलन कर उसे खत्म कर देती है । यह दर्शाया है, यहाँ जनता के द्वारा सत्ता में परिवर्तन दिखाकर शंकर शेष ने जनता की शक्ति की महता को सिद्ध किया है।

"कालजयी की मृत्यु पुखी जैसी स्त्री के हाथों से दिखाकर नाटककार ने समझाया है कि राजनीति में जो तलवार से बचते है उन्हें कभी कभी फूल से कटना पड़ता है"[11]।

'घरौंदा'

सन् 1974 में लिखा गया यह नाटक पहली बार मुंबई में मंचित हुआ । इससे महानगरीय जीवन में आवास की समस्या किस तरह ज़िंदगी और मौत की समस्या बन गई यह दर्शाया है। इस नाटक की नायिका छाया और नायक सुदीप चाहकर भी इसलिए शादी कर नहीं पाते क्योंकि उनके पास रहने के लिए घर नहीं है, "मध्यवर्गीय लोगों के लिए घर की समस्या कितनी भीषण बन चुकी है। इसका यथार्थ चित्रण इसमें किया हैं" ।

'अरे! मायावी सरोकार'

यह नाटक लोक नाट्य शैली में लिखा गया है, श्री सत्यदेव दुबे जी के निर्देशन में प्रथम इसका मंचन हुआ यह रचना महत्वपूर्ण है। इसमें बताया गया है की स्त्री और पुरुष के आपसी समंजस्य के कारण ही समाज व्यवस्था अच्छी तरह चल सकती है अत: पुरुष को चाहिए कि वह स्त्री को समझ लें और स्त्री को चाहिए कि पुरुष को समझ ले, दोनों भी महत्वपूर्ण है इस संदर्भ में डॉ सुनीता मंजन लिखती है – "एक के अभाव में दूसरा अधूरा है"[12] । आज स्त्री-पुरुषों में वृत्तिगत खायी दिखाई देती अगर इसे मिटाना है तो निहायत जरूरी है स्त्री-पुरुषों में आपसी समझ तभी एक सुखमय जीवन जिया जा सकता है। इसी कि ओर यह नाटक इशारा करता है।

[11] नाटककर शंकर शेष - डॉ सुनिलकुमार लवते, पृष्ट स.52.

[12] शंकर शेष व्यक्तित्व एवं कृतित्व - डॉ सुनीता मंजन बैल, पृष्ठ स.59

‘रक्तबीज’

इसके संदर्भ में डॉ रमेश गौतम कहते है “वस्तुत; एक पौराणिक प्रतीक का सहारा लेकर नाटककार ने आधुनिक बुद्धिजीवी वर्ग का पर्दाफाश किया हैं, जो सत्ता और व्यवस्था से जुड़कर अपने स्वार्थ साधते साधते निरीह और विवश बन गया है”[13] । हर छोटा आदमी बड़ा बनाना चाहता है इसके लिए उसे मेहनत, ईमानदारी आदि रास्ते निरर्थक महसूस होते है । छोटा आदमी अपने ईमान का निलाम कर बड़े आदमी का इस्तेमाल कर बड़े बनने कि ख्वाईश रखता है इसमें वह अपनी स्त्री कि भी बलि देता हैं । इसके बदले पाता है टी०वी, फ्रिज, कार, केबिन आदि भौतिक सुख-सुविधाएं। अत: प्रतिष्ठा, बड़प्पन, महत्वाकांक्षा आदि इस दुनिया के लोगों के खून के रक्तबीज बन गये हैं जिसे खत्म करना मुश्किल हो गया है। यही नाटककार इस नाटक के जरिए बताना चाहता है।

‘राक्षस’

यह नाटक लोक नाट्य शैली में लिखा गया हैं, समूह नाट्य होने के कारण पात्रों की अधिकता है इसमें तथा गौण कुल पात्र है इसमें गीता की भी अधिकता हैं। इसमें दिखाया गया है कि राक्षस याने हमारा विध्वंसक वैज्ञानिक आविष्कार एटम, यूरेनियन, हायड्रोजन आदि परमाणु बमों का निर्माण है। जिसे विश्व के महासत्ताधारियाओं ने पाला पोसा है। विश्वास नगर ऐसा गाँव है जहां के लोगों को राक्षस ने परेशान किया है सारे गाँव के लोग चिंतित है। आखिर राक्षस से समझौता कर हर आदमी को राक्षस के पास भेजने का फैसला होता है मगर श्वेतदेवी नायक स्त्री इसका विरोध करती हैं। वह गाँव के युवकों में संगठन निर्माण कर राक्षस का वध करती है इससे नाटककार ने अधिक आववकि युद्धों कि विनाशकारिता कि तरफ हमारा ध्यान खींचकर हमें सजगता का इशारा दिया है।

[13] हिन्दी के प्रतीक नाटक - डॉ रमेश गौतम, पृष्ठ स.259, 260

‘पोस्टर’

इसके संदर्भ में डॉ० मधुकर हसामनीस लिखते हैं- इस नाटक का रचनाकाल 1977 है ‘पोस्टर’ महाराष्ट्र की कीर्तन शैली में लिखा लोक नाट्य है डॉ शंकर शेष की यह प्रभावकारी नाट्य रचना है। “पोस्टर के सामूहिक अभिनव की तुलना मराठी नाटक ‘घासीराम कोतवाल’ से की जा सकती है। ‘पोस्टर’ नाटक का प्रथम मंचन ‘अविष्कार’ मुंबई द्वारा किया गया। सुवर्ण महोत्सवी प्रयोग कर पोस्टर ने आधुनिक हिन्दी नाट्य सृष्टि में नया कीर्तिमान स्थापित किया है”[14]। इस नाटक में आदिवासी लोगों किस तरह जुल्म कर अपनी घर आबाद करते हैं यह दर्शाया है अनपढ़ लोगों को अपनी खेती- कारखानों में रोजना एक रुपया मजदूरी देकर काम करवाया जाता है जिन विश्वासों से पटेल उन्हे जीवित रखना चाहता है वैसे ही ये मजदूर जीते हैं। इसलिए उनकी बहू- बेटियों की इज्जत लूटने पर, निर्धन जनता खामोश रहती है। एक परंपरा के रूप में इस बात को स्वीकार करती है और जब कोई मजदूर उनके खिलाफ आवाज उठाना चाहता है, तो उसे खत्म कर दिया जाता है उसे जेल भिजवाकर उसकी बीवी को पटेल की हवेली पर पहुंचाया जाता है। नाटककार ने कल्लू को हार-जीत का फैसला पाठक- दर्शकों पर छोड़कर कल्लू को महत्ता को स्वीकार किया है।

‘चेहरे’

आज के इस आधुनिक युग में व्यक्ति अपने चेहरे पहनकर जीता हैं। वह दिखाता नहीं, जो नहीं है उसे दिखाने के प्रयास में लगा रहता हैं। आश्चर्य की बात यह है कि हर व्यक्ति दूसरे का नकली चेहरा उतार कर असली चेहरा उजागर करने के प्रयास में रहता है। आज हमें नकली बातों में रहने कि आदत हो गयी है। इस नाटक में भी समाजसेवा भरोसे जी कि मृत्यु और उसके शव के अंतिम संस्कार की यात्रा आदि को चित्रित करते हुए यात्रा में शामिल हर

[14] डॉ शंकर शेष के नाटकों का अनुशीलन - डॉ मधुकर, पृष्ठ स.42.

व्यक्ति के असली चेहरे को बेनकाब किया है शवयात्रा में शामिल व्यक्ति केवल रस्मों-रिवाज, कर्मकांड को निभाने कि धारणा से शामिल हुआ है, बारिश के कारण शवयात्रा बीच में ही रोककर एक खंडहर में आसरा लिया जाता है तो शवयात्रा में शामिल लोग गप्पे हांकना। शतरंज खेलना, शराब पीना, ट्रांसिस्टर न होने से चिंतित होना आदि बर्ताव करते है, इन सबके जरिए नाटककार ने इंसान की संवेदनहीन स्वार्थी प्रवृत्ति को उजागर किया है।

'कोमल गांधार'

डॉ० शंकर शेष का झुकाव रामायण, महाभारत की ओर रहा है, उन्होंने ऐतिहासिक मिथकीय प्रसंगों को लेकर उसे आधुनिक स्थिति से जोड़ने का प्रयास कर यह दर्शाया है कि परिस्थितियां बदल जायें फिर भी कुछ परम्पराएँ आज भी कायम हैं। भले ही वह अयोग्य, अन्यायी क्यों न हो। शंकर शेष को गांधारी कि असमान्य दृढ़ता ने मोह लिया जिसकी उपज कोमल गांधार है। यहां शंकर शेष ने गांधारी के माध्यम से उसके संघर्ष को प्रस्तुत किया तथा गांधारी और कुंती की तुलना कर जीवन की तरफ देखने की दृष्टि को प्रकट किया है। गांधारी ने धोखे के कारण आँखों पर पट्टी बांध ली और संसार के प्रति उदासहीनता दिखाई दूसरी तरफ कुंती ने इस जीवन में भी सार्थकत्ता ढूँढने का प्रयास किया।

'त्रिकोण का चौथा कोण'

यह नाटक सन् 1979 में लिखा गया है यह नाटक शंकर शेष जी ने दूरदर्शन के अधिकारी की मांग पर लिखा। यह तीन अंकों में है लेकिन अभी यह प्रकाशित नहीं हुआ है, क्योंकि इसकी पाण्डुलिपि भी अप्राप्य है।

'आधी रात के बाद'

शंकर शेष की यह अंतिम नाट्य कृति है समाज के सफेदपोश लोगों के आचरण पर प्रहार करने के उदेश्य से यह नाटक लिखा गया है। नाटक की सारी घटनाएं आधी रात के बाद घटित होती है इस रहस्यात्मक नाटक में दिखाया गया है कि जज के घर चोरी करने आया चोर

जज की चोरी को उजागर कर देता है। अत: समाज में प्रतिष्ठित सफेदपोश कहलाने वाले लोगों की काली करतूतों को सामने लाना। इस नाटक का उदेश्य है।

अन्य कृतियाँ

एकांकी

शंकर शेष बहुमखी साहित्यकार थे नाटक के साथ-साथ उन्होंने एकांकी लेखन भी किया। उनके नाम छ: एकांकी नाटक हैं। वह निम्न प्रकार से विश्लेषित किये हैं।

'विवाह मंडप'

एक एकांकी नाटक सन् 1957 में लिखी गई इसका प्रथम मंचन शंकर शेष जी ने अपने कालेज में किया। दूसरी बार इसका मंचन 'मोरिस' कालेज में हुआ। यह एकांकी नाटक उपलब्ध नहीं है।

'हिन्दी का भूत'

यह एकांकी नाटक सन् 1958 में लिखी गया। शंकर शेष जी का यह पहली व्यंगात्मक शैली में लिखी एकांकी है। सन् 1973 में यह कृति रेडियो प्रसारण हेतु लिखी थी यह कृति अनुपलब्ध है इस बारे में डॉ शिवाजी पवार ने लिखा है –"रेडियों प्रसारण के बाद सितंबर 1976 में इसका दूरदर्शन से भी प्रसारण हुआ। दूरदर्शन के इस प्रसारण की श्री इकबाल मसूद द्वारा प्रस्तुत समालोचना द्रष्टव्य है। जिससे इस कृति के कथ्य पर भी कुछ प्रकाश पड़ जाता है। अपने अस्तित्व और प्रगति के लिए संघर्षरत शहरी मध्यवर्ग की सीमा नामक युवती अपने कालेज के युवा मित्र से विवाहपूर्ण संबंधों के लिए इंकार करती है। परंतु बाद में वही एक बुद्धिवादी कवि, प्रौढ़ कार्यालय अधिकारी तथा उसके वंचक सहायक के हाथों उनका शिकार बनती है। बाद में उसका पुराना कालेज साथी उसकी अपराध भावना को नष्ट करने में सफल

होता है। इस प्रेम त्रिकोण का अनिवार्य चौथा कोण अनिवार्य चौथा उसके बच्चे हैं। जो नारी जीवन की अंतिम परिणित है”[15]।

‘पुलिया’

ठेकेदार साबू को पुलिया बनाने का ठेका सरकार की तरफ से मिला है। सरकार की तरफ से मिला सारा पैसा, सीमेंट, मिट्टी आदि लग जाता है। ठेकेदार साबू उसका साथी लक्खी और सरकारी अफसर उल्लू गबन कर खा जाता है “इनके माध्यम से शंकर शेष तथाकथिक रचनाकार कहलाने वाले ठेकेदारों, अभियंताओ, अफसरों की अत्यंत स्वार्थपरता व देशद्रोहिता का पर्दाफ़ाश किया है”[16]। इन्हीं भ्रष्टाचरियों की वजह से समाज हित के कितने ही काम वैसे ही रह जाते है। पुलिया कभी बनती ही नहीं इसे दर्शाया है।

‘अजायबघर’

सन् 1981 में यह एकांकी शंकर शेष दूरदर्शन के लिए लिखी थी। तथा इसके प्रस्तुतीकरण के संदर्भ में दूरदर्शन तंत्र उसकी सीमाओं का पूरा ध्यान रखा गया है। इस एकांकी में शंकर शेष ने शिक्षित एवं अमीर परिवारों की कृतिम ज़िंदगी को उभारने के उद्देश्य से लिखी। इस एकांकी में शंकर शेष के पात्रों के मानसिक द्वंद्व को बड़े प्रभावशाली ढ़ंग से चित्रित किया है।

‘एक प्याला काफी था’

यह एकांकी अनुपलब्ध है।

---

[15] डॉ शंकर शेष के धरौदा नाटक का कैथी और शिल्प - डॉ शिवाजी पॉवर, पृष्ठ स.21.

[16] शंकर शेष व्यक्तित्व और कृतित्व - डॉ० सुनीता मंजन, पृष्ठ स.211.

अनूदित नाटक

शंकर शेष मध्यप्रदेश निवासी थे। परंतु मराठी भाषा पर उनका पूरा अधिकार था। जब शंकर शेष बिलासपुर से नागपुर शिक्षा के लिए आए तो मराठी भाषा से उनका संबंध और अधिक बढ़ा। मराठी नाटकों ने उन्हें प्रभावित किया। जिन मराठी नाटकों ने शंकर शेष को प्रभावित किया उनका अनुवाद उन्होंने हिन्दी में किया। उनके अनुवादित नाटकों ने भी हिंदी साहित्य में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई और हिंदी साहित्य जगत को नयी दिशा प्रदान की।

‘दूर के दीप’

मराठी के मशहूर नाटककार श्री वी॰ वा॰ शिखड़कर का लिखा – ‘दुरचे दिबे’ नाटक का अनुवाद सन् 1959 में शंकर शेष ने हिन्दी में ‘दूर के दीप’ नाम से लिखा।

‘पचतंत्र’

सन् 1981 में श्री माधव साखरदाड़े के मराठी पंचतंत्र का किया अनुवाद शंकर शेष की अंतिम साहित्य कृति है।

‘और एक गार्बो’

महेश एल कूंचावर लिखित ‘गार्बो’ नाटक का यह अनुवाद है। इसमें वेश्यागमन करने वाले लोगों की ज़िंदगी और उनकी मानसिक स्थिति का चित्रण किया है। इस संदर्भ में डॉ लवटे लिखते हैं, “द्वितीय विश्वयुद्धोतर परिस्थितियों की पृष्ठभूमि पर लिखा यह नाटक एक सामाजिक विश्लेषण हैं”[17]।

[17] नाटककर शंकर शेष - डॉ सीनिता लवटे, पृष्ठ स. 85.

‘चल मेरे कहु ठुम्मक- ठुम्मा’

मूल, अरथी नाटक ‘चल रे भोपव्या तुणुक हुणुक’ श्री अच्युत वझे द्वारा लिखा गया है। इसका अनुवाद शंकर शेष जी ने ‘चल मेरे कछु ठुम्मा’ नाम से किया है। यह काहू दिखावटी मनुष्य का प्रतीक है। नाटक बंबई जैसे महानगर में रहने वाले मध्यवर्ग लोगों के ज़िंदगी को दर्शाता है। भाउराव मकान है उसे अपने किरायेदारों पर रोब झाड़ना आता है अगर अपने बच्चों के तरफ होने वाले उत्तरदायित्व की तरफ उसका बिलकुल ध्यान नहीं है। उसकी लड़की पढ़ी लिखी और पश्चताय संस्कृति की प्रेमा है। उनके घर गेस्ट के रूप में रहने वाले बांदेकर नाम के युवक से वह व्यापार करती है बांदेकर उससे विवाह भी कर लेता है, पर उन्हें बच्चा होने के बाद बांदेकर ज़िंदगी का खोखलापन अनुभव करने लगता है। आज का आदमी धन हासिल कर लेता है तब उसे खोखलेपन का अनुभव होने लगता है।

उपन्यास

नाटक और उपन्यास दोनों विधाओं में वैसे देखा जाए तो बौर अंतर है शंकर शेष एक नाटककार होते हुए भी उपन्यास लेखक भी हैं, यह उनकी बहुमुखी प्रतिभा के कारण ही संभव हो सका है। शंकर शंकर शेष के उपन्यास लेखन के बारे में डॉ लवटे लिखते है “उपन्यास पढ़ते समय लगता है कि उपन्यासकार हमसे बातें कर रहा हैं। उपन्यास कथानात्मक शैली में लिखने कि उनकी पद्धति बेहद आकर्षक हैं”[18]।

इसका प्रत्यय सचमुच ही शंकर शेष के उपन्यास पढ़ते समय होता है। नाटक कि तरह उपन्यास लेखन में भी वे सफल हुए हैं।

[18] नाटककर शंकर शेष - डॉ सुनील कुमार लवटे, पृष्ठ स.88

‘तेंदू के पत्ते’

यह उपन्यास 1956 में लिखा गया है। यह उपन्यास अनुपलब्ध होने से इसके बारे में अधिक जानकारी नहीं मिलती।

‘चेतना’

यह उपन्यास 1971 में लिखा शंकर शेष का दूसरा उपन्यास है, ‘चेतना’और शंकर शेष का ‘बंधन अपने अपने’ नाटक दानों कि कथावस्तु एक ही है। इसमें शिक्षा व्यवस्था में फैली भ्रष्टाचार का चित्रण किया है।

‘खजुराहों की अलका’

यह उपन्यास 1972 में लिखा गया ‘खजुराहों का शिल्पी’ इस नाटक की और खजुराहों की अलका इस उपन्यास की कथावस्तु एक ही है। डॉ शंकर शेष ने नाटक में पूर्णरूप में अपनी बात न कह पाने के कारण उसका विस्तृत चित्रण उन्होंने उपन्यास ‘खजुराहों की अलका’ में किया है।

‘धर्म क्षेत्र – कुरुक्षेत्र’

सन् 1980 में लिखा यह उपन्यास शंकर शेष की अधूरी कृति है, इस संदर्भ में डॉ सुनीता मंजन बैल लिखती है ‘अंश ‘सारिका’ के 301वे अंक में प्रकाशित हुआ था प्रकाशित अंक के आधार पर कहा जा सकता है कि शायद यह उपन्यास वे ‘भीष्म कि आत्मकथा’ के रूप में लिखना चाहते थे”[19] मगर दुर्भाग्यवश यह उपन्यास उनकी मृत्यु के कारण अधूरा ही रहा।

---

[19] शंकर शेष व्यक्तित्व एवं कृतित्व - डॉ सुनीता मंजन बैल, पृष्ठ स.221

अनुसंधान कार्य

शंकर शेष ने नाटक, उपन्यास आदि के साथ-साथ अनुसंधान का भी कार्य भी किया है, उनके अनुसंधान के कार्य को देखकर लगता है वह किसी वैज्ञानिक से कम नहीं। हिन्दी और मराठी कथा साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन ; शंकर शेष जी हिन्दी और मराठी दोनों भाषाएँ अच्छी तरह से जानते थे। इसी से प्रेरणा लेकर उन्होंने पी०एच०डी० उपाधि के लिए 'हिन्दी और मराठी कथा साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन' यह विषय लेकर शोध ग्रंथ प्रस्तुत किया। इसके लिए उन्हे डॉ गोपाल गुप्ता का निर्देशन मिला। सन् 1961 में उनके इस प्रबंध को स्वीकृति देकर नागपुर विश्वविधालय ने उन्हे पी० एच० डी० की उपाधि से नवाजा।

छतीसगढ़ का भाषाशात्रीय अध्ययन

डॉ शंकर शेष सामंत परिवार में जन्मे थे। उनके यहाँ जो नौकर-नौकरानियाँ थी। वह छत्तीसगढ़ परिवेश कि थी। अत; छतीसगढ़ के प्रति जिज्ञासा बचपन से ही शंकर शेष को थी। इसी जिज्ञासा ने उन्हे छत्तीसगढी का भाषाशास्त्रीय अध्ययन करने के लिए प्रेरित किया। उनके इस अध्ययन को मध्यप्रदेश ग्रंथ अकादमी ने इसे प्रकाशित किया। इस अध्ययन में उन्होंने छतीसगढ़ी का परीक्षण, अवलोकन किया तथा आदिम जतियों कि धने जंगलो में होनेवाली बस्तियों में जाकर उससे साधन जुटाएँ। इतना कठिन कार्य शंकर शेष जी जैसे अध्ययन प्रेमी इंसान ही कर सकता है।

आदिम जाती शब्द संग्रह एवं भाषाशात्रीय अध्ययन

शंकर शेष ने यह शोध ग्रंथ सन् 1967 में लिखा है। डॉ शंकर शेष के *'छत्तीसगढ़ी का भाषाशात्रीय अध्ययन'* के कारण मध्यप्रदेश सरकार ने उनकी नियुक्ति भोपाल में *'भाषा और संस्कृति'* विभाग के अनुसंधान अधिकारी के रूप में की थी। इस काल में आदिम जाति शब्दावली का संग्रह किया, परंतु कम कि बहुलता के आर कारण यह कार्य अधूरा ही रहा गया। शंकर शेष के स्वभाव के विविध पहलू हमें नजर आते है। जहाँ एक ओर वह मिलनसार,

हंसमुख, विनम्र स्वभाव के थे। तो दूसरी ओर अनुशासन प्रिय, आदर्श अध्यापक तथा क्षेष्ठ प्रशासक के रूप में नजर आते है। उनमें आत्मसुधार कि भावना थी, उन्होंने खुद को कभी दूसरों से विशिष्ट इंसान नहीं समझा इसी कारण अन्य लोगों ने भी उन्हे कभी पराया आदमी नहीं माना, वे लोगों के दिलों को अपनी विनम्रता से छु लेते थे। घर से मिले अच्छे संस्कार, साहित्यिक, धार्मिक माहौल आदि से बाल्यावस्था से ही शंकर शेष साहित्य के तरफ आकृष्ट हुए तभी से एक साहित्यकार तथा नाटकार का उदय हुआ। उनके पिता की नाटक में रुचि थी। उनमें भी कहीं बचपन से ही सुप्त रूप से थी। जो आगे चलकर पनप उठी। शंकर शेष जी ने हिन्दी नाट्यविधा को समृद्ध बनाने का महत्वपूर्ण कार्य किया है। उन्होंने सामाजिक, पौराणिक, एतिहासिक तथा समकालीन विभिन्न विषयों पर नाटक लिखें। उन्होंने रामायण, महाभारत से लेकर आधुनिक समाज की विभिन्न समस्याओं तथा विषयों पर अपने नाटक प्रस्तुत कर प्रयोगशील नाटकार के रूप में सफलता पायी। वे आधुनिक काल के हिन्दी नाट्य सृष्टि के सशक्त नाटकार थे। हिन्दी नाट्यसृष्टि को समृध्द बनने के लिए उन्होंने द्वारा दिया गया, योगदान हम कभी भुला नहीं पायेगें।

द्वितीय अध्याय

यथार्थवाद का स्वरूप

2.1 यथार्थ शब्द की उत्पति और विकास

यथार्थ शब्द से हमारा परिचय आधुनिक युग में हुआ है ! परंतु यथार्थ जैसे किसी विचार का प्रयोग मानव समाज में प्राचीन समय से होता रहा है। उदाहरण के रूप में इसके प्रथम पद चिन्ह गुफाओं में उकेरे गए चित्रों में मिलते है। प्राचीन समय के साहित्य में यथार्थ उपस्थित रहता ही था। कोई भी साहित्य अपने समय के सापेक्ष ही हुआ करता है। परंतु समय के साथ-साथ मनुष्य वर्तमान के प्रति अधिक सजग होता गया। रचनाकारों की यथार्थ के प्रति रूचि अधिक बढ़ी। रचनाकारों ने मानव के बाह्य स्वरूप को ही नहीं चित्रित किया बल्कि उसके आंतरिक पक्ष को भी चित्रित करने का कार्य किया है। यह प्रवृति धीरे-धीरे प्राचीन और मध्यकाल से होती हुई, आधुनिक काल में प्रखर रूप में हमारे सामने आ खड़ी होती है। यथार्थ लेखन की शुरुआत पाश्चात्य जगत के किसी काल विशेष या रचनाकार के द्वारा नहीं हुई। लेकिन यह कहा जा सकता है कि यथार्थ के प्रति वैज्ञानिक व दार्शनिक आधार देने और समय सापेक्ष इसका अध्ययन करने का कार्य पाश्चात्य जगत ने किया है। डॉ शिव कुमार मिश्र अपनी पुस्तक यथार्थवाद की समय सीमा को लेकर लिखते है। “19वीं शताब्दी के मध्य बल्कि कुछ और बाद को ही, यह स्थिति सामने आयी, जब कि यथार्थ के प्रति इस स्वाभाविक अभिरुचि तथा निष्ठा ने एक दार्शनिक वैज्ञानिक आधार प्राप्त किया और एक वाद या आंदोलन के रूप में अपनी स्पष्ट अभिव्यक्ति दी ”[1] । साहित्य के संदर्भ मेंकहा जा सकता है कि आज के समय

[1] यथार्थवाद - डॉ शिवकुमार मिश्रा, पृष्ठ स.20.

में यथार्थ साहित्य का अभिन्न अंग बनकर सामने आ रहा है यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा कि आज साहित्य-जगत के लिए यथार्थ वह स्थिति है जो मानव जन जीवन के लिए वायु है। यथार्थ का प्रसार आज उपन्यास, कहानी और नाटकों, तक ही सीमित नहीं है बल्कि साहित्य कि अन्य विधाओं (जैसे आत्मकथा, जीवनी, रिपोर्टर्ज़, निबंध, साक्षाकर, डायरी, पटकथा, संस्मरण, रेखाचित्र) में भी इसकी पहुँच है। लेकिन यथार्थ प्रारंभ से आज तक जिस समृद्ध एवं विकसित रूप में हमारे सामने प्रस्तुत हुआ है। उसकी इस विकास यात्रा में उपन्यास, कहानी और नाटक विधा ने अविस्मरणीय भूमिका अदा की है। कहने का आशय यह है कि साहित्य में यथार्थ, कहानी, उपन्यास और नाटक के सहारे ही अपने शिखर पर पहुंचा है। लेकिन "भारतेन्दु ने इस बात को अच्छी तरह से समझ लिया था कि सामाजिक वास्तविकता कि सबसे यथार्थ अभिव्यक्ति नाटकों में ही हो सकती है, ऐसी स्थिति में छंदोबद्ध नाटकों कि अनुपयुक्ता को ध्यान में रखते हुए उन्होंने गद्य का प्रवर्तन किया " ।[2] भारतेन्दु ने इस बात को उस वक्त समझ लिया जिस समय भारत पर ब्रिटिश साम्राज्य का कड़ा शासन था। हर गतिविधियों पर उपनिवेशवादी ताक़तें बड़ी सूक्ष्मता से नज़र रख रही थी। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इस पर आश्चर्य प्रकट करते हुए लिखा है कि "विलक्षण बात यह है कि आधुनिक गद्य साहित्य कि परंपरा का प्रवर्तन नाटकों से हुआ। लेकिन सच तो यह है कि विलक्षण बात तब होती जब हिन्दी गद्य-परंपरा का प्रवर्तन नाटकों से न होता"[3] क्योंकि नाटक विधा में अतुलनीय प्रतिभा है वह रंगमच के माध्यम से जन-जन के संपर्क में बड़ी तीव्रता से पहुँचती है। मानव अपने समय की गतिविधियों से पूर्णता प्रभावित होता है और नाटक में अपने वर्तमान की अभिव्यक्ति करने की क्षमता सबसे अधिक है। इसलिए नाटक वर्तमान जगत से बहुत घनिष्ठ रूप से जुड़ा हुआ दिखाई देता है। नाटक अभिव्यक्ति कि दृष्टि से उत्कृष्ट रचना विधान

[2] हिन्दी नाटक - बच्चन सिंह ,पृष्ठ स. 23; तीसरा संस्कारण ;2018

[3] एक की पृष्ठ -23

है जो क्षमता नाटक रचना विधान में है, वह उपन्यास और कहानी के रचना विधान में कम दिखाई देती है। इसका कारण यह है कि नाटक दृश्य-काव्य होने के कारण भावों और विचारों को समाज के हर वर्ग तक सुलभता से प्रेषित करता है और उनका साधारीकरण आसानी से हो जाता है। विभिन्न देश-काल के व्यक्तियों के मनोभाव और परिस्थितियों की प्रस्तुति जितनी अच्छी तरह नाटक में की जा सकती है उतनी अन्य विधा में नहीं। भारतेन्दु हरिश्चंद्र तथा उनके मंडल के लेखक अपनी समसामयिक ,सामाजिक, आर्थिक, तथा राजनैतिक गतिविधि के प्रति पूर्ण जागरूक थे। भारतेन्दु से पूर्व लंबे समय तक साहित्य में नाटक की अनुपस्थिति देखने को मिलती है। 18वीं शताब्दी के अंतिम दशक में अनुवाद के द्वारा संस्कृत साहित्य से कुछ कालजयी नाटकों का अनुवाद प्रारंभ हुआ। भारतेन्दु ने अनुवाद के द्वारा ही अपने नाट्य लेखन की शुरूआत की। नाटकों को अपने समकालीन परिदृश्य से जोड़ते हुए प्राचीन नाट्य परंपरा में नए अध्याय का शुभारंभ किया। भारतेन्दु के नाटकों में हास्य, व्यंग्य के माध्यम से समकालीन विसंगतियों पर गंभीरता से विचार किया गया है। प्रस्तुत अध्याय में यथार्थ के शाब्दिक उद्भव से लेकर उसके विकास की यात्रा को दर्शाया गया है। साथ ही यथार्थ शब्द के आशय को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। इसे स्पष्ट करने के लिए विभिन्न विद्वानों की परिभाषाओं का सहारा लिया गया है इसके साथ-साथ यथार्थ शब्द की सीमा व उसके वास्तविक अर्थ को समझने की कोशिश की है। साथ ही साहित्य में यथार्थ की भूमिका पर विचार किया है।

यथार्थ से तात्पर्य

यथार्थ के लिए अनेक पर्यायवाची शब्द प्रयुक्त होते है जैसे ; जस का तस, वास्तविक, हु-ब-हु आदि नामों से जाना जाता है। यथार्थ से तात्पर्य है- ‘जिसका वास्तविक जगत में अस्तित्व है’ अर्थात यथार्थ में सत्य की प्रकृति की जांच पड़ताल की जाती है और यथार्थ में मनुष्य जीवन की समस्त अनुभूतियों का वास्तविक चित्रण किया जाता है। *राम कृपाल पाण्डेय*

ने यथार्थ शब्द के आशय को बहुत ही सहज एवं स्पष्ट रूप में उजागर किया है- “सबसे पहले सवाल उठता है कि यथार्थ है क्या अपने व्यापक रूप में यथार्थ का अर्थ है- सम्पूर्ण जगत यथार्थ है उसकी प्रत्येक वस्तु, प्रत्येक कण एवं प्रत्येक स्पंदन यथार्थ में निहित है। संक्षेप में यथार्थ का अर्थ है अस्तित्व या सत्ता। जो कुछ भी अस्तित्व में है, वह यथार्थ है”[4]।

‘यथार्थ’ के लिए अंग्रेजी के ‘Reality’शब्द का प्रयोग होता है। संस्कृत और हिन्दी में यथार्थ के लिए भाव रूप में समानार्थी शब्द सत्य, तथ्य, उचित और वास्तव आदि प्रयोग में लाया जाता है परंतु ‘यथार्थ’ ही ‘Reality’ का समानार्थी बनने में समर्थ हो पाया। यथार्थ शब्द दो शब्दों की संधि से निर्मित हुआ है यथा+अर्थ। यथा अव्यय है जिसका हिन्दी अर्थ ‘जैसा है’ ‘जैसा होना चाहिए ठीक वैसा’ ‘वाजिब’ उचित, सच्चा, असली, अर्थात वस्तु जैसी भी है। स्थूल रूप से यथार्थ की मूल संकल्पना यह है कि ‘जो हम वर्तमान में देख रहे है जिन परिस्थितियों से हमारा पारंपरिक संबंध है जिन घटनाओं से हमें घृणा मन में द्वेष, राग निर्माण होने लगता है उसका साहित्य के माध्यम से सही संप्रेषण करना ही यथार्थ है। यथार्थ शब्द की संकल्पना अतिशय व्यापक है। यथार्थ के स्वरूप को स्पष्ट करने का प्रयास अनेक विद्वानों ने किया है। *प्रो० सुवास कुमार* यथार्थ के संदर्भ में अपने विचार इस प्रकार अभिव्यक्त करते है। “यथार्थ मूलत दर्शनशास्त्र से सबंधित शब्द है, अस्तित्व है, इस अस्तित्व के साथ ही वस्तुगत यथार्थ जुड़ा होता है। पदार्थ अपने रूप की संपूर्णता में वस्तुगत यथार्थ है, किन्तु यथार्थ कि अवधारणा इतिहास के विभिन्न समयों में परिवर्तित और विकसित होती रही है। यथार्थ को व्यावहारिक तथा आत्मिक वास्तविकताओं का समन्वय माना गया तथा यथार्थवाद को इसका कलात्मक उदघाटन”[5]। *डॉ० गुलाबराय* ने यथार्थ को परिभाषित करते हुए कहा “यथार्थ वह है जो नित्या हमारे सामने घटता है उसमें पाप-पुण्य, सुख-दुख, की धूप-छाया का मिश्रण रहता

---

[4] आलोचना त्रैमासिक - संपादक नामवर सिंह, पृष्ठ स. 55; अक्तूबर -दिसंबर 1976.

[5] गल्प का यथार्थ कथालोचना के आयाम - सुवास कुमार, पृष्ठ स.14.

है। यह समान भाव-भूमि के समतल पर रहकर वर्तमान का वास्तविकता से सीमाबद्ध रहता है"[6]। *डॉ० त्रिभुवन सिंह* के अनुसार- "साहित्य में वह सभी यथार्थ है जिसके पीछे साहित्यकार कि अपनी अनुभूति है जिसे वह दूसरों को अनुभूति करा सकता है"[7]। *डॉ० अजब सिंह* ने यथार्थ के संदर्भ में कहा "यथार्थ का मतलब मैं जो समझता हूँ वह तो वस्तु स्थिति के अनुरूप होता है- जैसी वस्तु है वैसी स्थिति का वर्णन करना ही यथार्थ है"[8]। *डॉ० भगवती चरण वर्मा* यथार्थ को परिभाषित करते हुए लिखते है "यथार्थ वह सब है जो इस विश्व में स्वाभाविक रूप से घटित होता रहता है जहाँ बुद्धि का अनुशासन नहीं है, यथार्थमूल रूप से मानव अस्तित्व का सत्य है। प्रसिद्ध आलोचक *डॉ० खगेंद्र ठाकुर* ने भी यथार्थ के संदर्भ में अपने महत्वपूर्ण विचार रखे हैं "यथार्थ का मतलब है कि विषय-वस्तु का अनुभव सिद्ध चित्रण और चरित्रों, घटनाओं एवं तथ्यों को सामाजिक परिवेश में मनुष्य और समाज के गतिशील आपसी संबंधों की रोशनी में चित्रात्मक ढंग से पेश करना। इस तरह से चित्रित यथार्थ न तो किसी तरह का आंतक पैदा करता है और न किसी आंतक का शिकार होता है। इस रूप में यथार्थ जीवन का केवल वस्तुगत चित्रण करता है। बल्कि जीवन की अनेक अंतर्निहित सच्चाइयों के रहस्य खोलकर उसे समझने में मदद करता है, जीवन को सच्चे संदर्भ में प्रस्तुत करके पाठकों की भी अनुभूति का विषय बन जाता है, साथ ही वह विषय-वस्तु और चरित्रों के सामाजिक संबंधों का भी स्पष्टीकरण करता है"[9]। भारतीय विद्वानों के अनुसार ही पाश्चात्य विद्वानों ने भी यथार्थ के स्वरूप को स्पष्ट करने का प्रयास किया है - *हावर्ड फास्ट* यथार्थ के संदर्भ में अपने विचार इस प्रकार प्रकट करते है। "यथार्थ तो व्याकुलता पैदा करता है शक्तियों की सच्ची प्रकृति की पड़ताल में जाने को बाध्य करता है तथा एक ऐसे क्षोभ को पैदा करता है जो कभी भी लपटों

[6] मुक्तिबोध की कविता में यथार्थबोध - शशिबाला शर्मा, पृष्ठ स.11.

[7] हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद - त्रिभुवन सिंह, पृष्ठ स.16.

[8] यथार्थवाद पुनर्मूल्याकन -प्रभकर क्षोत्रिय, पृष्ठ स.16 ; मई -2000.

[9] अब पत्रिका पृष्ठ 84

में बदल सकता है। सबसे बड़ी बात तो यह है कि यथार्थ एक किस्म कि पक्षधरता कि माँग करता है क्योंकि सच्चाई हमेशा पक्षधर ही होती है"[10]। *हावर्ड फास्ट* आगे चलकर यथार्थ का संबंध संस्कृति से जोड़ते हुए कहते है "यथार्थ का चाहे जितना भी सीमित बोध क्यों न हो, वह संस्कृति के लिए एक आधार अवश्य प्रस्तुत करता है। यह संस्कृति स्वयं में एक ऐसा यथार्थ बन जाती है जिससे एक लेखक को जूझना चाहिए तभी वह कला का निर्माण कर सकता है। अगर वह इससे मजबूती और सच्चाई के साथ जूझेगा तो उसकी कला उस संस्कृति विशेष के खत्म होने के बाद भी जिंदा रह सकती है जिसने उसे जन्म दिया था"[11]। *हावर्ड फास्ट* का यह भी मानना है कि "कला न तो पहले न आज ही स्वप्न से बुनी जा सकती है दुनिया कि सारी महान, टिकाऊ, स्थाई, कला हमेशा यथार्थ कि प्रतिबिंब रही है"[12]।

कार्ल मार्क्स के अनुसार - "अगर चीजों का बाहरी ढांचा, रूप और प्रकृति व पूर्णतया एक जैसी होती तो सारे विज्ञान बेकार ही हो जाते। क्योंकि ये तीन तत्व एक जैसे नहीं है। इसलिए सभ्यता के आरंभ से यथार्थ की पहचान एक वैज्ञानिक प्रक्रिया रही"[13]। *अर्नेस्ट फिशर* की यथार्थ को लेकर मान्यता है "कि यदि हम यथार्थ को एक पद्धति के रूप में न लेकर एक दृष्टिकोण के रूप में परिभाषित करना चाहे तो कला के अंतर्गत यथार्थ के चित्रण के रूप में हम पाएंगे कि अमूर्त कला जैसी कुछ चीजों को छोड़कर वस्तुत सारी कला यथार्थ-कला है। अतएव अधिक व्यावहारिक तथा उपयोगी यह होगा कि हम यथार्थ को चित्रण कि एक विशिष्ट पद्धति के रूप में ही स्वीकार करें"[14]। उपरोक्त परिभाषाओं को समझने के बाद यथार्थ के स्वरूप को समझना सहज तो हो गया है, लेकिन यथार्थ की संकल्पना में और अधिक व्यापकता छिपी

---

[10] साहित्य और यथार्थ - हवार्ड फास्ट, पृष्ठ स. 6

[11] साहित्य और यथार्थ - हावर्ट फास्ट, पृष्ठ स.15

[12] साहित्य और यथार्थ - हावर्ट फास्ट, पृष्ठ स.14

[13] साहित्य और यथार्थ - हावर्ट फास्ट, पृष्ठ स.14

[14] यथार्थवाद - शिवकुमार मिश्र, पृष्ठ स.19

हुए है जिसे किसी भी विद्वान की एक परिभाषा के द्वारा पूरा करना अपने आप में संभव कार्य नहीं है। लेकिन सभी विद्वानों ने अपनी परिभाषा में यथार्थ के किसी न किसी एक पहलू को बड़ी सही ढंग से अभिव्यक्त किया है जैसे- *प्रो॰ सुवास कुमार* यथार्थ शब्द को दर्शन शस्त्र से संबंधित बताते है, लेकिन यह बात अन्य विद्वानों की परिभाषाओ में नहीं है। उन्होने यथार्थ को परिवर्तनशील व विकासमान माना है। वही *डॉ॰गुलाबराय* यथार्थ को नित्य घटित घटना के रूप मेंदेखते है और यथार्थ को वास्तविकता से सीमाबद्ध मानते हैं। दूसरी तरफ *डॉ॰ अजब सिंह* यथार्थ को वस्तुस्थिती से जोड़कर देखते है और जैसी वस्तु है उसका वैसा ही चित्रण करना यथार्थ है लेकिन यहाँ सवाल यह उठता है कि कभी-कभी हम जो देख रहे होते हैं वो सच नहीं होता इसका मूल कारण उस घटना की प्रकृति में छिपा होता है। यथार्थ कोई फोटोग्राफी प्रकिया नहीं है। किसी भी घटना की प्रकृति को जाने बिना सच्चाई तक नहीं पहुँचा जा सकता है। *डॉ॰ भगवती चरण वर्मा* यथार्थ को स्वाभाविक रूप से घटित घटना का स्वाभाविक चित्रण मानते हैं जहां बुद्धि का अनुशासन न हो परंतु मुझे नहीं लगता कि जहाँ पर बुद्धि का अनुशासन नहीं होगा, वहां यथार्थ को जानना सहज होगा क्योंकि हम बिना बुद्धि के अनुशासन के तथ्यात्मक अध्ययन नहीं कर सकते है और यथार्थ की जांच पड़ताल के लिए ***तथ्यात्मक अध्ययन अनिवार्य*** है। इसलिए कहा जा सकता है कि ***यथार्थ एक वैज्ञानिक प्रकिया है***। पाश्चात्य विद्वानों ने यथार्थ का संबंध व्याकुलता से जोड़कर देखा है। जो अपने आप में बहुत ही महत्वपूर्ण बात है क्योंकि बिना व्याकुलता के इच्छा शक्ति का विकास नहीं होता और बिना इच्छा शक्ति के किसी भी कार्य को पूरा नहीं किया जा सकता, इसीलिए यथार्थ तक पहुँचने के लिए ये पहली शर्त है और यही व्याकुलता हमें यथार्थ कि प्रकृति तक ले जाने का कार्य करती है। लेकिन भारतीय विद्वानों कि परिभाषाओं में प्रकृति की बात कहीं भी नहीं कि गई है जो अपने आप में बहुत बड़ी त्रुटि मुझे दिखाई देती है क्योंकि यथार्थ को जानने के लिए किसी भी समस्या की प्रकृति को जाना बहुत अनिवार्य हो जाता है। हवार्ड फास्ट अपनी

परिभाषा के माध्यम से कहते है, यथार्थ एक किस्म की पक्षधरता है। क्योंकि सच्चाई हमेशा पक्षधर ही होती है। लेकिन मनुष्य पक्षधर तभी होगा जब वह बुद्धि के अनुशासन में कार्य करेगा। दूसरी तरफ वह कहते हैं कि सारी महान, टिकाऊ, स्थाई, कला हमेशा यथार्थ को ही अभिव्यक्त करती है, जिसके कारण यथार्थ का दूसरा पक्ष उभर कर सामने आता है कि यथार्थ का संस्कृति से गहरा संबंध है। *कार्ल मार्क्स* ने यथार्थ को एक वैज्ञानिक प्रक्रिया के रूप में देखा है। और यथार्थ को तीन चीजों का सममिश्रण माना है। बाह्य ढांचा, प्रकृति और रूप। यह तीनों चीजें कभी एक नहीं होती इसी कारण सभ्यता के निर्माण से ही यथार्थ की पहचान एक वैज्ञानिक प्रक्रिया है। इस तुलनात्मक अध्ययन के बाद इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि यथार्थ कोई आधुनिक संकल्पना नहीं है यथार्थ के प्रति मानव सभ्यता अपने उद्भव से जुड़ी है चाहे यह रूप गौण ही रहा हो। जिसको आधुनिक काल में प्रमुखता से अभिव्यक्ति मिली। जिसके अपने मूलभूत भौतिक, राजनैतिक, धार्मिक, सामाजिक और आर्थिक कारण रहें। और यथार्थ के मूल रूप कि बात करें तो उसके मूल में वास्तविकता और वस्तुगत चित्रण उसके मूल आधार हैं और बाह्य रूप से प्रकृति को जानना अनिवार्य तत्व के रूप मेंस्वीकार करना होगा। मेरे अनुसार *'यथार्थ के 'वस्तुगत' व 'वास्तविकता' आधार होने चाहिए। प्रकृति उसका सहायक तत्व और यथार्थ का वास्तविक स्वरूप पक्षधरता होना चाहिए वही यथार्थ है'*

2.2 यथार्थ और यथार्थवाद

यथार्थ और यथार्थवाद को लेकर कुछ लोगों का मानना है, कि दोनों भिन्न-भिन्न होकर भी एक हैं। लेकिन दोनों में अंतर है। जीवन की सच्ची अनुभूति यथार्थ है, लेकिन इसका कलात्मक अभिव्यक्तिकरण यथार्थवाद है। यथार्थवाद को दो शब्दों में विभाजित किया गया है। **यथार्थ+वाद** अर्थात वह जीवन की सच्ची अनुभूति यथार्थ है। *वाद* का अर्थ-

अनुकरण करना है, उसी मार्ग पर चलना, सिद्धांत आदि है। इस प्रकार यथार्थवाद का सम्पूर्ण अर्थ है जो जैसी वस्तु है उसका उसी प्रकार वर्णन करना।

यथार्थ और यथार्थवाद के बीच के मूल अंतर को परिभाषित करने पर कई महत्वपूर्ण तथ्य सामने आते हैं। कला की सहायता से कलाकार सत्य के साथ संघर्ष करता है। इस क्रम में वह वास्तविकता को दिखाता है और साथ ही उन चीजों पर भी दृष्टिपात करता है जो वास्तविक नहीं है अर्थात जो दिखाई नहीं दे रहा है। कलाकार भविष्य के प्रति संभावना व्यक्त करता है। इस संदर्भ में *रॉइल फॉक्स* कहते हैं "कला एक साधन है जिसके द्वारा मानव वास्तविकता से जूझता है और उसका आत्मसात करता है। अपनी भीतरी चेतना की निहाई पर लेखक वास्तविकता रूपी, लाल भुभुका को रखता है, हथौड़ियों के चोट से ठोक पीट कर अपने उद्देश्य के लिए उसे नई शक्ल में ढालता और एक दम बेसुध होकर नाओमी मीचीसन के शब्दों में विचार के हिंसक हथौड़े उस पर बरसाता है, सृजन की समूची प्रक्रिया, कलाकर की समूची वेदना, वास्तविकता के साथ किसी हिंसक द्वंद में और दुनिया का एक महत्वपूर्ण चित्र गढ़ने के इस प्रयास में निहित है"[15]। इस प्रकार यदि देखा जाए तो यथार्थ और यथार्थवाद के बीच विचारधारा का अंतर होता है। रचनाकार यथार्थ को देखकर उसे अपनी समझ और विचारधारा के अनुसार पाठक के समक्ष प्रस्तुत करता है। इसीलिए साहित्य में विचारधारा का महत्व बढ़ जाता है और इसी कारण एक लंबे समय से साहित्य और कला में समाज के उभरने वाले अलग-अलग स्वरूपों पर चर्चा होती रही है। यथार्थ और यथार्थवाद के बीच में अंतर करना आवश्यक है। यह दोनों ही तत्व एक दूसरे पर परस्पर निर्भर है जो एक दूसरे के पूरक भी कहलाते हैं। इस संदर्भ में *डॉ त्रिभुवन* ने कहा है कि "यथार्थ जीवन को यथार्थवादी कला के माध्यम से जोड़ने का प्रयत्न करता है, जोड़ने का यह प्रयत्न कल्पना के द्वारा संपादित होता है या इन दोनों की निश्चित स्वरूप प्रदान करने की क्रिया का निर्देशक तत्व है। जीवन की

[15] उपन्यास और लोक जीवन – फॉक्स राइल, पृष्ठ स.26 ;पीपहा०प्रा०लि० दिल्ली

सच्ची अनुभूति यथार्थ है । पर इसकी कलात्मक अभिव्यक्तिकरण यथार्थवाद है । नग्न यथार्थवादी कुरूपता एवं अश्लीलता को महत्व अवश्य देते हैं, पर विचारणीय यह है कि उनका चित्रण भी यथातथ्य चित्रण अथवा फोटोग्राफी चित्रण नहीं हो सकता । इस दृष्टि से यथार्थवाद का अनगढ़ स्वरूप है, इसका रॉमटेरियल"[16]। इस प्रकार देखा जाए तो यथार्थ, यथार्थवाद के लिए कच्चे माल की तरह काम करता है। यदि इसे हम मनोविश्लेषण के सिद्धांत के आधार पर कहे तो यथार्थ को अवचेतन के श्रेणी में रखा जा सकता है और यथार्थवाद को चेतन मन की श्रेणी में रखा जाएगा क्योंकि यथार्थवाद अपनी बात को संशोधित करके कलागत अभिव्यक्तिकरण को सामने लाता है लेकिन यथार्थ अपनी वास्तविक स्थिति में ही होता है। यदि यथार्थ सध्या है तो यथार्थवाद साधन का कार्य करता है। जो साहित्य विचारधारा की सहायता से लिखा जाता है तो वह यथार्थ के स्वरूप को स्पष्ट करता है और साथ ही यथार्थ और सत्य के बीच जो अंतर है उसे भी प्रदर्शित करता है यदि हम सत्य को विश्लेषित करने की कोशिश करें तो समान अर्थो में यह पता चलता है कि जो कुछ भी हमें दिखाई देता है वह सत्य है लेकिन विस्तार में जाए तो ये पता चलता है कि सत्य दो प्रकार का होता है एक व्यक्त सत्य होता है दूसरा अव्यक्त सत्य और यदि यथार्थ को सत्य के रूप में परिभाषित किया जाए तो इसके अन्तर्गत सत्य के दोनों रूप आएंगे । यथार्थ व्यक्त और अव्यक्त दोनों प्रकार के सत्य को अपने भीतर समाहित करता है।

कल्पना और यथार्थ का अपना संबंध कार्य करता है। यह कार्य यथार्थ में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। अक्सर ये सोचा जाता है कि यथार्थ या यथार्थवाद में कल्पना का कोई स्थान नही होता। लेकिन ऐसा बिलकुल नहीं है। क्योंकि साहित्य कल्पना के बिना नही लिखा जा सकता है। और कल्पना साहित्य सृजन करने का आधार है लेकिन यथार्थवादी लेखक की रचना में भी कल्पना में यथार्थ का पूट होता है। वे अपनी कल्पना सत्य

[16] हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद पृष्ठ -79

के अनुसार ही गढ़ते हैं। कल्पना जितनी अधिक यथार्थ की भूमि पर परिपक्व होगी उतनी ही जीवन की सत्य की गहराई तक पहुँच पाएगी, इस संदर्भ में *रांगेय राघव* ने कहा है कि “साहित्य का सत्य कल्पना को बिलकुल नहीं छोड़ देता, वह यथार्थ के धरातल पर दृढ़ होता है उतना ही गहराई तक पहुंचता है”[17]। अर्थात कल्पना को यथार्थ कर धरातल पर जाँचने और परखने की जरूरत होती है वह जितना अधिक यथार्थ की भूमि पर परिपक्व होता है उतना ही जीवन के सत्य की गहराई तक पहुँच पाएगा। साहित्य में कल्पना का बहुत महत्व होता है। वह कलाकार की दृष्टि के प्रकाश में परिपक्व होता है और एक समय पर यह विचारधारा का रूप ग्रहण कर लेता है। इस संदर्भ में *नामवर सिंह* कहते है कि “विचारधारा की सारी-की सारी बहस दृष्टिकोण से जुड़ती है जीवन और जगत को हम अलग-अलग दृष्टिकोण से देखते हैं और बहस करते हैं कि सच यही है इसीलिए एक ही सच है कौन एक से अलग-अलग होता है किसमेंनोक होती है और यह नोक दिखाई देती है”[18]। यहाँ पर नामवर के स्पष्टीकारण के द्वारा यह स्पष्ट होता है कि रचनाकार की साहित्य कृति के दृष्टिकोण से कोण की नोक् दिखाई देती है यही नोक साहित्यकार की विचारधारा होती उसके द्वारा वह अपनी अभिव्यक्ति करता है।

अतः कहा जा सकता है कि यथार्थ और यथार्थवाद में अंतर होते हुए भी वे एक दूसरे के साध्य व साधन की तरह कार्य करते हैं और एक दूसरे के अधिक पूरक नजर आते हैं। वह एक सिक्के के दो पहलू के समान देखे या समझे जा सकते हैं ।

2.3 यथार्थवाद की अवधारणा

व्यक्ति अपने जीवन में जो भी सच्चाई तथा वास्तविकता का अनुभव करता है उसे हम यथार्थ कहते हैं। यथार्थ के शाब्दिक अर्थ की चर्चा हमनें पहले अध्याय में कर ली है। अब

[17] आलोचना, पत्रिका 1952

[18] साहित्य और विचारधारा – नामवर सिंह, पृष्ठ स. 88; राजकमल प्रकाशन दिल्ली

हम 'यथार्थवाद' शब्द की संरचना को समझना का प्रयास करते है। यथार्थवाद शब्द *'यथार्थ'* और *'वाद'* शब्दों के मेल से बना है। "वाद शब्द तत्व के निर्णय के लिए बातचीत, तर्क, शास्त्रार्थ, निश्चित सिद्धांत का धोतक है"[19]। इस प्रकार 'यथार्थवाद' का सामान्य अर्थ है - किसी वस्तु-स्थिति का यथा-स्थिति, हु-ब-हु चित्रण प्रस्तुत करना। यह विचारधारा उस वस्तु एवं भौतिक जगत को सत्य मानती है, जिसका हम ज्ञानेद्रियों द्वारा प्रत्यक्ष अनुभव करते है, यथार्थवाद जैसा संसार है, उसको उसी रूप में स्वीकार करता है। हम सब जानते है यथार्थवाद की संकल्पना का संबद्ध पाश्चात्य सैद्धांतिक दर्शन से है। यथार्थवाद का विकास स्वच्छंदतावाद के विरुद्ध हुआ ऐसा माना गया है। स्वच्छंदतावादी साहित्य में काल्पनिक आदर्शवादी जीवन का वर्णन होता है। यथार्थवाद इसके बिलकुल विपरीत अपना सिंद्धांत देता है। यथार्थवादी साहित्य में जीवन जैसा है उसे वैसा ही प्रस्तुत किया जाता है। इसलिए हम कह सकते है कि यथार्थवाद स्वच्छंदतावाद के विरुद्ध उत्पन्न एक विचारधारा है। यथार्थवादी लेखक पर एक सामाजिक और नैतिक ज़िम्मेदारी होती है। लेकिन स्वच्छंतावादी लेखक अपने मनोभाव से प्रेरित होकर लिखने के लिए स्वत्रंत होते है, लेकिन यथार्थवादी लेखक की सीमा सीमित होती है, यथार्थवादी साहित्य में निम्न-वर्ग, सर्वहारा-वर्ग की समस्याओं का वर्णन, सरल भाषा का प्रयोग करते हुए करते है। यथार्थवाद का लक्ष्य पाठक के ज्ञान में वृद्धि करना है। 'यथार्थवाद लेखक के लेखन में कल्पना बाधक न सिद्ध होकर उनके लेखन को और अधिक समृद्ध करती है और वह सत्य तक पहुँचने में सफल होता है। यथार्थवाद के अर्थ को समझने के लिए इस संदर्भ में भारतीय और पश्चात्य विद्वानों का मत है। यथार्थवाद के संदर्भ में भारतीय विद्वानों के मतों में *मुंशी प्रेमचंद* ने यथार्थवाद के संदर्भ में अपना व्यक्तव्य रखते हुए कहा है कि "यथार्थवादी चरित्रों को पाठक के सामने उनके यथार्थ नग्न रूप में रख देता है उसे इससे कुछ मतलब नहीं की सच्चाई का परिणाम बुरा होगा या कुचरित्रता का परिणाम अच्छा। उसके

---

[19] हिन्दी शब्दकोश - पाठक आर० सी०, पृष्ठ स.634 ; (सम्पा०) भार्गव आदर्श

चरित्र अपनी कमजोरियों और खूबियाँ दिखाते हुए अपनी जीवन लीला समाप्त करते हैं और चूंकि संसार में सदैव नेकी का फल नेक और बदी का फल बद नहीं होता, बल्कि उसके विपरीत हुआ करता है नेक आदमी धक्के खाते हैं , यातनाएँ सहते हैं, मुसीबते झेलते हैं , अपमानित होते हैं, उनकी नेकी का फल उल्टा ही मिलता है। प्रकृति का नियम विचित्र है"[20]। *आचार्य नंदुलारे वाजपेयी* यथार्थवाद को समष्टि की अपेक्षा व्यष्टि की ओर उन्मुख स्वीकार करते हुए लिखते है, "यथार्थवाद वस्तु की पृथक सत्ता का समर्थक है। वह समष्टि की अपेक्षा व्यष्टि की ओर उन्मुख रहता है यथार्थवाद का संबंध प्रत्यक्ष वस्तु जगत से है। यथार्थवादी अपने को वैज्ञानिक दृष्टि सम्पन्न बताता है वह सत्य का खोजी हुआ करता है और उसका सत्य वही है जिसे वह अपनी इंद्रियों से जान पाया है"[21]। *आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी* यथार्थवाद को एक मानसिक प्रवृति के रूप में स्वीकार करते हुए यथार्थ के स्वरूप को परिवर्तमान स्वरूप में स्वीकार करने के अग्रणीय है। क्योंकि समय के साथ-साथ राजनैतिक, सांस्कृतिक, सामाजिक व आर्थिक परिस्थितियों में निरंतर बदलाव आता है, वह यथार्थ के संदर्भ में कहते हैं "कला के क्षेत्र में यथार्थवाद एक ऐसी मानसिक प्रवृति है, जो निरंतर अवस्था के अनुकूल परिवर्तित और रूपयित होती रहती है "[22]। *शिवदान सिंह चौहान* के अनुसार यथार्थवाद वह विचारधारा है जो समय की वास्तविकता को प्रतिबिम्बित करती है और यथार्थवाद का उदेश्य भी इसे ही स्वीकारा किया गया है "महान साहित्य और कला सदा निर्विकल्प रूप से जीवन कि वास्तविकता को ही प्रतिबिम्बित करती है, अंत: उसकी एकमात्र कसौटी भी उसका यथार्थवाद है "[23]। *रमेश चंद मिश्र* यथार्थवाद को तथातथ्य अभिव्यक्ति मानते हुए लिखते है "यथार्थवाद वस्तु-विषय का तथातथ्य अंकन करता है। यह आवश्यक

[20] कुछ विचार - प्रेमचंद, पृष्ठ स.49

[21] आधुनिक साहित्य - नन्ददुलारे वाजपेयी, पृष्ठ स.420

[22] विचार और विमर्श - द्विवेदी, हजारी प्रसाद, पृष्ठ स.45

[23] आलोचना - शिवदान सिंह चौहान, संपादकीय 1952,

नहीं कि वह वर्णन सुरूप है अथवा कुरूप, प्रिय है अथवा अप्रिय, उसका यथार्थत्मक होना ही पर्याप्त है। इस प्रकार यथार्थवाद विषय वस्तु के यथातथ्य अनुकरण तथा अतिव्यतिकरण कि प्रणाली को कहते है ”[24]। यदि यथार्थवाद कि सीमा यथातथ्य तक ही सीमित कर दी जाए तो यथार्थवादी कृति कल्पना-शून्य हो जायेगी। लेकिन किसी भी कलात्मक और साहित्यिक कृति में कल्पना का विशेष महत्व होता है। कल्पना रहित कृति कलात्मकता से भिन्न होकर आंकड़ों और ब्यौरो का संग्रह-मात्र बनकर रह जाएगी इसलिए यह कहा जा सकता है कि यथार्थवाद के लिए जितना यथातथ्य का होना जरूरी है उतना ही कल्पना का भी। वो इसलिए यदि यथार्थवादी लेखक को यथार्थवादी साहित्य लिखना है तो कलात्मकता और साहित्य की कल्पनाशीलता के बिना उनका अपना कोई अस्तित्व नहीं बचता है। इस संदर्भ में *रघुवीर सहाय* ने यथार्थवाद को स्पष्ट करते हेतु ‘यथार्थ’ शब्द के स्वरूप पर विस्तृत चर्चा की है। उनके अनुसार “यथास्थिति ही यथार्थ नहीं है, यह समझने के लिए हमें उन असंख्य भावनाओं, विचारों और अनुभवों में से कुछ को जान लेना काफी है। जिनसे वस्तुपरक ब्यौरों में अभिव्यक्त नहीं मिलती परंतु जो अवश्य ही हम सब जानते हैं कि सत्य है। वे ही वस्तुस्थिति को बदलते हैं, बशर्ते की अभिव्यक्ति हो। वे न्याय और समानता के आदर्शों से उत्पन्न हैं और उनकी अभिव्यक्ति कला का चरम उत्कर्ष है, जहाँ कला सबसे कम होती है, परंतु सबसे अधिक परिवर्तनकारी प्रभाव डालती है”[25]। *डॉ त्रिभुवन सिंह* यथार्थवाद में कल्पना के समावेश को अनिवार्य मानते हुए लिखते हैं “यथार्थवाद न तो इतिहास है कि वह किसी भी घटना कि सूची तैयार करता चले, न तो वह कैमरा है जो वस्तु उसके सामने आये उसका हु-ब-हु चित्र उपस्थित कर दे, न तो अजायबघर है जो दुनिया भर की तमाम चीजों को कागज के पन्नों पर संग्रहीत कर दे और न तो उसने मानव कि जुगुप्सित तथा विलासी प्रवृत्तियों को संतुष्ट करने के लिए

[24] पाश्चात्य समीक्षा सिद्धांत - रमेश मिश्र, पृष्ठ स. 44

[25] यथार्थ यथास्थिति नहीं - रघुवीर सहाय, पृष्ठ स.137

अजेय एवं गोपनीय जघन्य स्थलों तथा घटनाओं को उपस्थित कराने का ही बीड़ा उठा रखा है। यथार्थवाद का एकमात्र लक्ष्य वस्तु जगत की स्थितियों को समक्ष रखते हुए सुंदर से सुन्दरतम स्थितियों कि ओर समाज को उन्मुख कराना है"[26]। यथार्थवाद कि परिभाषा देते हुए विभिन्न पाश्चात्य आलोचकों ने इसके विभिन्न अलग-अलग पहलुओं की व्याख्या की है। जिनको समझने से यथार्थवाद कि प्रकृति को समझने में सहायता मिलेगी जो इस प्रकार है यूरोप के प्रसिद्ध साहित्यकार व इतिहासकार *कजामिया* ने यथार्थवाद के संदर्भ में अपने विचार देते हुए कहा है- 'Realism in art is not a method but a tendency'[27] (यथार्थवाद कला या साहित्य में एक शैली नहीं है , बल्कि एक विचारधारा है)। कजमिया के अनुसार यथार्थवाद मात्र कला और साहित्य में रचनाशैली नहीं है बल्कि वह एक विचारधारा है, जिसके अंतर्गत ही साहित्य की रचना होती है। *जार्ज लुकाज* ने यथार्थवाद की वस्तुनिष्ठ परिभाषा देते हुए कहा है- "it is a condition singuamnan of geat realism that the author must honestiy record without fear on feavour everything he see around him" (यथार्थवादी ऐसा होना चाहिए जिसमें लेखक बिना किसी पक्षपात या भय के ईमानदारी के साथ जो कुछ अपने इर्द-गिर्द देखते है। उसका यथा तथ्य चिंतन करे)। यथार्थवाद वह साहित्यिक संयोग है, जो चुनाव और रचना के माध्यम से अपने वास्तविक विचारों को समुचित रूप में पाठकों के सामने व्यक्त करता है। *एगेल्स* ने 'यथार्थवाद' के स्वरूप को बड़े संक्षिप्त, किन्तु बड़े तात्विक रूप से स्पष्ट करते हुए कहा है- "मेरे विचार से यथार्थवाद का आशय यह है कि लेखक विवरणों और ब्यौरों के सत्य प्रस्तुतिकरण के अलावा प्रतिनिधि पात्रों को प्रतिनिधि परिस्थितियों में सच्चाई के साथ चित्रित करें"[28]। उपरोक्त विद्वानों के मत से स्पष्ट हो जाता है कि यथार्थवाद मात्र यथार्थ का चित्रण नहीं, अपितु कल्पना मिश्रित

---

[26] हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद - सिंह, त्रिभुवन, पृष्ठ स.71

[27] ए हिस्ट्री ऑफ इंगलिश लिटरेचर – कजमिया

[28] यथार्थवाद - शिवकुमार मिश्र, पृष्ठ स.25

यथातथ्य का प्रस्तुतिकरण है इसके माध्यम से समाज को सुंदरतम स्थितियों कि ओर उन्मुख कराने का प्रयास होता है। यथार्थवाद सुख-दुख और अभावों का उल्लेख करता है। यथार्थवाद केवल कुरूप, वीभत्स तथा घिनौने पक्षों तक ही सीमित मानना एक भ्रांति हो सकती है। उपरोक्त विचार विमर्श के बाद कहा जा सकता है कि यथार्थवाद सत्य को उजागर करने वाली कला है और वह उसे ईमानदारी तथा सम्पूर्ण वस्तुपरकता के सत्य उजागर करता है।

यथार्थवाद का विकास और विस्तार

यथार्थवाद के पारिभाषिक अर्थ को समझने के बाद हम यथार्थवाद की विकास यात्रा को समझने का प्रयास करेंगे और इसके विकासक्रम में किन-किन अन्य विचारधाराओं ने अपनी अहम भूमिका अदा की उनका विश्लेषण करेंगे। यथार्थवाद एक विचारधारा है। जिसका सीधा संबंध कार्ल मार्क्स के **द्वंदात्मक भौतिकवाद** के सिद्धान्त से है। कार्ल मार्क्स ने संसार के मूल में द्वंदात्मकता को महत्व दिया है। जिसका आधार चेतना को न मानकर पदार्थ को माना है। यथार्थवाद का विकास कार्ल मार्क्स के द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के सिद्धात के परिणाम स्वरूप साहित्य और कला में हुआ। अब यह सवाल उठता है कि यथार्थवाद के विकास का उद्भव बिन्दु क्या है? इसे जानने के लिए हमें इतिहास पर नज़र डालनी पड़ेगी। जब हम साहित्य इतिहास को देखते है तो साहित्य में यथार्थवाद के विकास के लिए एक लंबे समय से पृष्ठभूमि तैयार हो रही थी। 19वीं शताब्दी में ऐसी अनेक विचारधारायें विकसित हो रही थीं जिन्होंने यथार्थवाद के लिए एक पृष्ठभूमि बनाई। यथार्थवाद के विकास में प्रमुख रूप से निम्न विचारधाराओं ने सर्वाधिक प्रभाव डाला है।

1. चार्ल्स डार्विन का 'जीव विकासवाद'
2. सिगमंड फ्रायड का 'मनोविश्लेषण'
3. कार्ल मार्क्स के 'अर्थ विज्ञान का प्रभाव'

4. 'वैज्ञानिक आविष्कारों' का प्रभाव

चार्ल्स डार्विन का जीव विकासवाद, के सिद्धांत ने जैसे मानव के उद्भव और विकास संबंधी पूर्ववर्ती मान्यताओं को उलट दिया। "डार्विन ने मानव विकास का निरूपण करते हुए मनुष्य को पशु की ही विकास नस्ल स्वीकार किया फलत: आदर्शवादी विचारण द्वारा निरूपित मनुष्य संबंधी दृष्टिकोण भी विज्ञानसम्मत तथ्यों के प्रकाश में सारहीन हो गए। मनुष्य के संबंध में एक नये दृष्टिकोण का विकास हुआ और इस दृष्टिकोण ने जहाँ एक स्तर पर आदर्शवादी-भाववादी विचारों द्वारा अनुप्रेरित स्वच्छंदतावादी चेतना की लोक प्रियता को कम किया जिसने अन्य स्तर पर यथार्थवाद को शक्ति प्रदान की"[29]। इस खोज ने मानव इतिहास की उत्पति के भाववादी सिद्धांतों को हिलाकर रख दिया और मनुष्य तथा प्रकृति को एक दूसरे के करीब लाकर खड़ा कर दिया। अब मनुष्य के लिए यह सोचना उसकी मजबूरी हो गई कि वह धर्म, अध्यात्म और परलोक चिंतन जैसे मध्यकालीन विश्वासों को छोड़कर बाह्यजगत और उसके भौतिक विकास को ध्यान में रखते हुए अपने बारे में नये सिरे से सोचे। डार्विन के इस सिद्धांत का बहुत अधिक प्रभाव यथार्थवादी विचारधारा पर पड़ा जिसके कारण यथार्थवाद को एक मजबूत आधार प्राप्त हुआ। इस वैज्ञानिक खोज ने यह सिद्ध किया। कि मनुष्य और प्रकृति के बीच में द्वन्दात्मकता का रिश्ता है। इसके बाद हिन्दी साहित्य के लेखन में नाटक के साथ-साथ अन्य गघ विधों के लेखन में भी इसका प्रभाव देखा जानने लगा और आधुनिक हिन्दी साहित्य के इतिहास में एक अलग काल खण्ड की नींव डाली। जिसे हम सब हिन्दी साहित्य के इतिहास में आधुनिक काल खण्ड के रूप से जानते हैं। जहाँ विषयवस्तु में कोई आदर्श व अलौकिकता का पुट होता था अब उसका स्थान सत्य, यथार्थ ने ले लिया था।

[29] यथार्थवाद - शिव कुमार मिश्र, पृष्ठ स.22

सिंगमण्ड फ्रायड का मनोविश्लेषणवाद

सिंगमण्ड फ्रायड ने मनोविश्लेषण के आधार पर यथार्थवाद को सत्यता के करीब लाकर खड़ा कर दिया। उन्होंने बताया कि मानव की काम-भावना ही सर्वोपरि है, यह सिद्धांत उस समय आता है जब काम वासना जैसे विषयों पर बात ही नहीं की जाती थी और ऐसे विषयों को समाज में अश्लीलता के अंदर गिना जाता था। किसी भी समाज में डर के कारण कामवासना जैसे मुद्दे पर बात करना शर्म का कार्य माना जाता था। सिंगमण्ड के अनुसार, मानव जो अवचेतन में स्थिति दामित काम-भावना पर उसके गुण-दोष संबंधी विवेक शक्ति को प्रभावित करती है। जो उसकी सामाजिक मर्यादा को नियंत्रित करती है। किन्तु अनेक ग्रंथियों में कामवृति के विचार जन्म लेते है। फ्रायड के अनुसार दो प्रकार का यथार्थ होता है *मानसिक यथार्थ* और दूसरा *वास्तविक यथार्थ*। इस दोनों यथार्थ को केंद्र में रखते हुए सत्यकाम कहते है – यदि वास्तविक यथार्थ अति कठोर या अति हताशाजनक है तो मानो कल्पनाएं या फैंटसीयाँ अधिक शक्तिशाली हो जाती हैं और मनुष्य मनौविज्ञानिक यथार्थ में इस प्रकार जीने लगता है, मानो वह वास्तविक यथार्थ हो। इस प्रकार फ्रायड ने मनोवैज्ञानिक यथार्थ की शक्ति की पहचान कराई। उसने मनुष्य के आंतरिक जीवन और बचपन में ही मनुष्य में काम-भावना के आरंभ हो जाने की सच्चाई का उद्घाटन किया और आगे चलकर साहित्य और कला में इसका प्रभाव देखा गया और मानसिक यथार्थ साहित्य जगत तक पहुँच पाया।

कार्ल मार्क्स के अर्थ विज्ञान का प्रभाव

मार्क्सवादी विचारधारा ने आर्थिक और सामाजिक विषमता की बारीकी से पहचान की। कार्ल मार्क्स ने मानव इतिहास को दो वर्ग में बाँटा शोषित वर्ग तथा शोषक वर्ग। उन्होंने भाववादियों को बताया कि मानव इतिहास वर्ग संघर्ष का इतिहास है, न की ईश्वर द्वारा निर्मित इतिहास। शोषितों के जीवन संघर्ष के साथ आर्थिक और सामाजिक विषमताओं के प्रति

उनका आक्रोश यथार्थवादी साहित्य का प्रमुख आधार बना। शोषित वर्ग की समस्याओं का यथार्थपरक निरूपण किया और उन्होंने आर्थिक विकास को ही समस्त वर्ग का विकास बताया। आर्थिक विकास को स्पष्टता से अभिव्यक्त करते हुए कार्ल मार्क्स के मित्र एंगेल्स ने कहा है, राजनैतिक, धार्मिक, साहित्यिक और कलात्मक विकास आदि सभी का विकास मात्र एक ही चीज के विकास पर निर्भर है वह है **आर्थिक विकास**। इस चिंतन ने वर्ण व्यवस्था को अनेकों सवालों के घेरे में ला खड़ा किया। क्योंकि भारतीय समाज में दुख व सुख और गरीबी व अमीरी का संबद्ध भगवान की कृपा से जोड़कर देखा जाता था ना की वर्ग संघर्ष से। भारतीय वर्ण-व्यवस्था ने इस विचार को हर दम बनाए रखा व उसके लिए अवतारवाद को अपना साधन बनाया और भगवान के डर को दिखाकर इस व्यवस्था को चलाया। जो आज भी देखा जा सकता है लेकिन आज यथार्थवादी दृष्टि ने समाज को एक विकल्प दिया है कि सृष्टि के निर्माण को इस दृष्टिकोण से भी देखा जा सकता है जिसमें कार्ल मार्क्स के द्वंदात्मक सिद्धांत की अहम भूमिका देखने को मिलती है। जिसका हिन्दी साहित्य जगत पर स्पष्ट प्रभाव चिन्हित किया जा सकता है इसका सबसे बड़ा उद्धरण हिन्दी साहित्य के प्रगतिवाद से लिया जा सकता है वो इसलिए क्योंकि प्रगतिवादी साहित्य में मानव की समस्याओं को पूरे विरोधात्मक ढंग से साहित्य मेंरखा गया है। प्रगतिवादी साहित्य आर्थिक समानता की बात को उठाता है।

वैज्ञानिक आविष्कारों का प्रभाव

विज्ञान के दृष्टिकोण से अठारवीं सदी तथा उन्नीसवी सदी के आविष्कार बहुत ही उल्लेखनीय है। 1789 की प्रसिद्ध फ्रांसीसी राज्यक्रांति ने स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व जैसा प्रसिद्ध नारा दिया। उन नारों ने जार शासित राज्य में भी बुलंदी के साथ जन मानस में चेतना का प्रसार किया। जिसके कारण स्वच्छंदतावादी चेतना का विकास हुआ और दूसरी तरफ नयी-नयी मशीनों के आविष्कार के कारण वस्तुओं के उत्पादन तथा वितरण में अद्वितीय

पहल हुई और मुद्रण यंत्रों के आविष्कार से साहित्य में व्यक्तियों की रुचि बढ़ाने लगी। जिसने विज्ञान से साहित्य और समाज को जोड़ने का कार्य किया गया। सन् 1838 में फोटोग्राफी यंत्र का आविष्कार हुआ जिसने वस्तुओं को जस का तस प्रस्तुत करने का अहम भूमिका अदा की। उपरोक्त सभी विचारधारों व सिद्धान्ताओं ने यथार्थवादी विचारधारा को मजबूती प्रदान करने में अतुलनीय कार्य किया है। जिसका साहित्य और कला पर सीधा प्रभाव देखने को मिलता है। इन सभी बिंदुओं ने यथार्थवादी विचारधारा में विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

2.4 साहित्य और यथार्थवाद

मनुष्य अपनी ज्ञानेन्द्रियों की सहायता से ही बाह्य जगत के सम्पर्क मेंआता है। वह इंद्रियों के द्वारा बाह्य जगत को देखता है, और बाह्य जगत का अनुकरण करके वहाँ की अनेकों अनुभूतियों से अपने ज्ञान को संचित करने का कार्य करता है। यह प्रकिया निरंतर चलती रहती है। इंद्रियों द्वारा संचित ज्ञान ही अभिव्यक्ति का विषय बनकर सामने आता है। इस प्रकिया के द्वारा ही साहित्य का निर्माण होता है। इस संदर्भ मेंडॉ० शिव कुमार मिश्र अपनी पुस्तक में लिखते हैं कि “बाह्य जगत के निरपेक्ष मन की कोई सत्ता ही नहीं है, वह उसके अभाव में अभिव्यक्ति कर ही नहीं सकता। चेतन एक प्रकाश की भांति बाह्य जगत के पदार्थों को मन के समक्ष उद्घाटित करती है और मन उनकी अभिव्यक्ति किया करता है। वह अभिव्यक्ति साहित्य का रूप ले, कला का रूप ले अथवा ज्ञान के किसी अन्य विषय का”[30]। जिसे हम साहित्य कहते हैं। वह केवल लेखक की कोरी कल्पना मात्र नहीं है बल्कि वह बाह्य जगत का संचित ज्ञान है, जिसे वह अपनी प्रतिभा के द्वारा अभिव्यक्त करता है। जिसे हम साहित्य के रूप में स्वीकार करते हैं। साहित्य का सृजन समाज में घटित घटनाओं से होता है। जिसे वह

[30] यथार्थवाद – शिवकुमार मिश्र, पृष्ठ स.167

अपने मन में संचित करता है और अपने विश्लेषण के बाद विषयवस्तु को तैयार करता है। उसके बाद वह साहित्य की किसी विधा के रूप में अभिव्यक्त हो पाती है।

ये बात हुई साहित्य की विषयवस्तु के निर्माण की। अब सवाल यह खड़ा होता है कि साहित्य में यथार्थ का आरंभ कहां से पाया जाता है ? इस संदर्भ में डॉ शिव कुमार मिश्र लिखते हैं कि, "देश-विदेश के प्राचीनतम साहित्य एवं कलारूपों को देखें तो उनसे भी यही तथ्य स्पष्ट होगा कि संसार के साहित्य तथा कला जगत में प्रारंभ से ही यथार्थ का चित्रण होता रहा है। यथार्थ, साहित्य एवं कला की अभिव्यक्ति का बुनियादी विषय रहा है"[31]। इस सन्दर्भ में हमेंयह मानकर चलना होगा कि सृजननात्मक तौर पर पहली बार मनुष्य ने गुफाओं में चित्र दीवारों पर उकेरे थे। जब उसे भाषा का ज्ञान हुआ फिर उसको लेखन के माध्यम से अभिव्यक्त किया। इस सभी अभिव्यक्तियों में यथार्थ का पुट जरूर रहा होगा। इसीलिए हम कह सकते है एक आनुमानिक तौर पर की यथार्थ की अभिव्यक्ति का आरंभ यही से मानकर चलना चाहिए, इसी कारण से साहित्य एवं कला में यथार्थ का चित्रण प्रारभ से ही होता आया है। साहित्य या कलाकृति यथार्थ से शून्य नहीं हो सकती। यह अलग बात है कि उसमें यथार्थ का जो रूप उभरा है वह उसका सही रूप न हो। ये तर्क माना जा सकता है अब सवाल यहां ये उठता है कि यथार्थ का सही व व्यवस्थित रूप साहित्य में कब से आरंभ होता है ? उसकी क्या समय सीमा मानी जा सकती है ? ऐसा माना जाता रहा है कि यथार्थ और यथार्थ जगत का सही रूप और सटीक पहचान करने की शुरुआत एक वैचारिक व एक आंदोलन के रूप में सर्वप्रथम पश्चिम जगत से होती है। 19वीं शताब्दी को विद्रोह की शताब्दी भी कहा जाता है क्योंकि इस शताब्दी में सामाजिक ,आर्थिक, राजनैतिक, सांकृतिक परिस्थितियों में अनेक परिवर्तन देखने को मिलते हैं जिसका सीधा असर साहित्य जगत पर दिखाई देता है जिसके कारण 19वीं शताब्दी से यथार्थवादी साहित्य अधिक मात्रा में सामने आने लगता है। यदि भारतीय

[31] वही पृष्ठ स.167

संदर्भ में यथार्थवादी साहित्य के आगमन की बात की जाए तो इसमें भी पाश्चात्य जगत की ही अहम भूमिका देखी जाती है इस संदर्भ में डॉ० शिव कुमार मिश्र अपनी पुस्तक 'यथार्थवाद' में लिखते है कि "आधुनिक यूरोप के निर्माण में जो तत्व सहायक हुए वही आधुनिक भारत के निर्माण के कारण हैं। ये कारण थे – औधोगिक, सामंती व्यवस्था का विनाश तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण की प्रधानता। औधोगिक सभ्यता, वैज्ञानिक दृष्टिकोण तथा यूरोपीय भौतिकवादी संस्कृति ऐसे क्रांतिकारी तत्व थे जिनका भारतीय समांतवादी सभ्यता, विश्वासमूलक दृष्टिकोण तथा धार्मिक-आध्यात्मिक संस्कृति से संघर्ष हुआ। इस संघर्ष ने नवीन विचारधाराओं को जन्म दिया"[32]। जिस कारण भारतीय समाज में एक बड़े फलक पर परिवर्तन देखा गया है। इस युग में सदियों से मध्यकालीन धार्मिक तथा सामाजिक मान्यताओं की जकड़बंदी में दबते-सिसकते भारतीय समाज तथा भारतीय जीवन को विकास की एक नयी दिशाएं दिखाई देते हैं और नए धार्मिक, सामाजिक तथा वैचारिक आंदोलनों का जन्म इसी शताब्दी में हुआ। कहने का मतलब यह हुआ कि 19वीं शताब्दी में एक नए बौद्धिक जागरण की नींव रखी गई। अब भारतीय जीवन पश्चिम की भौतिक जीवन शैली के संपर्क में आने लगता है और भारतीय समाज पश्चिम की वैज्ञानिक चेतना व आविष्कारों से जुडने लगता है। इस वजह से भारतीयों की जड़ बुद्धि में एक अविश्वसनीय परिवर्तन देखने को मिलता है। अनेक दिशाओं में प्रबुद्ध भारतीय मानस को गति प्राप्त होने लगती है। अंग्रेजों ने भारत में जो भी किया वह अपने स्वार्थ को साधने के लिए किया था लेकिन अप्रत्यक्ष रूप से भारत को उसका लाभ जरूर हुआ था। भारत की राष्ट्रीय चेतना को आकार मिलता गया। इसी तरह भारतीयों का पश्चिमी देशों के वैचारिक जीवन की नाना प्रकार की विकासधाराओं से परिचय होता गया और देश के आम जन को इन सब बातों की जानकारी होती गई। देशवासियों को अपने देश की वास्तविक स्थिति का एहसास हुआ। अब सवाल यह सामने आता है कि भारत के साहित्यकारों का

[32] यथार्थवाद – शिवकुमार मिश्र, पृष्ठ स.171

परिचिय यथार्थवादी विचारधारा से कैसे हुआ ? वह इससे अपने आप को कैसे जोड़ते हैं ? इस संदर्भ में शिव कुमार मिश्र अपनी पुस्तक यथार्थवाद में लिखते हैं कि 'साहित्य के क्षेत्र में यथार्थवाद का जो विकास पश्चिम में हुआ उससे भारतीय बुद्धिजीवी तथा रचनकार सीधे परिचित न हो पाए थे किन्तु यह भी उतना ही सही है, कि जिस सामाजिक तथा वैचारिक कारणों ने पश्चिम में यथार्थवादी विचारणा के लिए पथ प्रशस्त किया था, किसी न किसी रूप में वे भारतीय बुद्धिजीवियों का भी संदर्भ बने' इसका भारतीय साहित्य पर सीधा प्रभाव देखने को मिलता है। यथार्थवाद ने सीधा आक्रमण मध्यकालीन मान्यताओं पर किया। जिसके कारण संसार और समाज में नयी वैचारिकी ने जन्म लिया। मनुष्य संसार की भौतिक परिस्थितियों पर विश्वास करने के लिए प्रेरित होने लगता है। क्रमश: वैज्ञानिक चेतना के कारण लोगों के मन पर पड़े मध्यकालीन धार्मिक विश्वासों के आवरण हटने प्रारंभ होते हैं। जिससे संसार और समाज को एक नया रूप दिखाई देता है। इसके प्रति लोगों की उन्मुखता बढ़ती है। इस संदर्भ में डॉ० शिव कुमार मिश्र लिखते हैं कि "परलोक की अपेक्षा लोक, साहित्य और कला के केन्द्रीय विषय के रूप में उभरा। मोक्ष के स्थान पर दुख-दरिद्रता से मुक्ति की कामना बलवती हुई। निश्चात ही 19वीं शताब्दी में जन्म लेने वाले धार्मिक-सामाजिक आंदोलनों ने जनता के मन का संस्कार करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। राष्ट्रीयता की जो नयी चेतना सामने आयी उसने भी देश तथा समाज के यथार्थ के प्रति लोगों का ध्यान आकर्षित किया"[33]आगे का काम धार्मिक-सामाजिक आंदोलनों ने किया। इसने सामाजिक जाग्रति की नयी दिशाओं को स्पष्ट किया। इस समय एक भारतीय पश्चिम के वैज्ञानिक विकास से अच्छी तरह परिचित हो जाता है। पश्चिम जगत के साहित्य से भी उनका परिचय हो जाता है। भारतीय रचनाकार भी साहित्यिक क्षेत्र में पूरी भागेदारी निभाने लगते हैं। दूसरी तरफ भारतीय समाज के नवजागरण में पत्र-पत्रिकाओं तथा समाचार-पत्रों ने भी अपनी

[33] यथार्थवाद – शिवकुमार मिश्र, पृष्ठ स.171

महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। इस संदर्भ में डॉ शिव कुमार मिश्र लिखते हैं कि "भारतीय मानस इतना प्रबुद्ध हो चुका था कि प्रेस तथा समाचार-पत्रों के स्वातंत्र्य तथा दायित्व को भली-भांति निभा सकता था। दमन के बावजूद निजी प्रयासों से, समाचार-पत्रों एवं पुस्तकों तथा पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से शिक्षित जनता तक पश्चिम की वैचारिक क्रांति तथा वैज्ञानिक प्रगति की सूचनाएं पहुचती रही और इस प्रकार भारतीय मानस तथा भारतीय जनता की निर्णायक लड़ाई के लिए तैयार किया जाता रहा"[34] इसके साथ-साथ डार्विन के विकासवाद के सिद्धांत ने देश के जीवन में उभरती हुई यथार्थवादी चेतना को ठोस वैज्ञानिक आधार दिया। इससे मध्यकालीन विश्वासों को बहुत ठेस लगती है। और मानव को बाह्य जगत व भौतिक विकास की ओर दिशा दिखाई।

जब हम हिन्दी साहित्य में यथार्थवाद के उद्भव और विकास की चर्चा करते हैं, हमें यह मानकर चलना चाहिए कि उसके बीज बड़ी प्रखर संभावनाओ के साथ भारतेन्दु और उनके सहयोगियों के कृतित्व में दिखाई देते हैं। यह सही है कि विशिष्ट जीवनदृष्टि तथा कला आंदोलन के रूप में यथार्थवाद का जो रूप पश्चिम में उभरा और अपने चरम शिखर पर ही उस समय तक भारतीय लेखक उससे अपरिचित थे। किन्तु इस अपरिचय के बावजूद हिन्दी में इन कर्मठ, जिंदादिल और जागरूक लेखकों ने अपनी धरती, अपने देश, अपने समाज और अपने परिवेश को खुली आँखों से निहारते हुए, नये भावबोध तथा विज्ञान से जितना वे जुड़ सकते थे, जुडते हुए, एक जीवित सच्चाई के रूप में जो कुछ हमेंदिया, वह कम महत्वपूर्ण नहीं है। इस जीवित सच्चाई को इन लेखकों की कविताओं, नाटकों एवं निबंधों में अनेक तेवरों के साथ सहज ही पहचाना जा सकता है।

[34] यथार्थवाद – शिवकुमार मिश्र, पृष्ठ स.173

नाटकों के क्षेत्र में यथार्थवाद की बात करें तो बाबू हरिचन्द्र भारतेन्दु का नाम लेना जरूरी है। उन्होंने अपने नाटकों में सामाजिक चेतना को प्रखर अभिव्यक्ति दी है। भारतेन्दु केवल नाटककार ही नहीं थे, बल्कि जन सामान्य में सामाजिक चेतना का प्रसार करने के लिए वह नाटकों के मंच में भी दिलचस्पी रखते थे। वह ठेठ जनता के बीच जाकर अपने नाटकों का मंचन भी करते थे। साथ ही अभिनेता के रूप में भी अपनी भूमिका अदा करते थे। नाटक को लिखकर छोड़ देना भर ही वह अपना काम नहीं समझते थे। वह नाटक को जीने का प्रयास करते थे। वह जानते थे कि सामाजिक चेतना के निर्माण में नाटक विधा भी एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकती है। जिसके द्वारा हम अपने विचारों को सहजता से आम जनता तक पहुँचा सकते हैं। भारतेंदु ने अपने अधिकांश नाटकों में सामान्य जन तथा देशदशा को ही चित्रित किया है। कहीं व्यंग का सहारा लेकर शोषक शक्तियों पर प्रहार करते हैं तो कहीं, मानवीय संवेदना और मानवीय करुणा को प्रधानता देते हैं। *'भारत दुर्दशा' नाटक में सामाजिक और राजनैतिक यथार्थ को* भली-भांति देखा जा सकता है। भारत दुर्दशा में अंग्रेजी राज की जितनी तीखी आलोचना की है उतनी ही तीखी भारतीय जनता की आत्म आलोचना भी है। इसमें एक ओर अंग्रेजी शासन और शोषण की यथार्थपरक तस्वीरें है, तो दूसरी ओर भारतीय जनता की काहिली, अंधविश्वास, भाग्यवाद और जातिवाद के चित्र भी हैं। इन चित्रों में भारतीय जनता की गुलामी के बीज छिपें हैं। इनके व्यंग में बहुत पैनापन है। वह मर्म को सीधे छूता है। भारतेन्दु ने उस समय की वर्तमान समस्याओं को साहित्य का आधार बनाया है। भारतेन्दु भक्ति का आचरण भी करते हैं। लेकिन उस भक्ति का संदर्भ अलग है। वह भारत दुर्दशा नाटक में मंगलाचरण में कृष्ण जी को याद करते हैं। लेकिन यहां पर कृष्ण जी को याद करने का उनका संदर्भ अलग है। यहाँ पर कृष्ण का स्मरण भारत की राष्ट्रीय पराधीनता से मुक्ति दिलाने के लिए करते हैं। भारतेंदु अपनी मिथकीय आस्था का उपयोग राष्ट्रीय सामाजिक पराधीनता से मुक्ति के लिए ही करते हैं।

भारत दुर्दशा नाटक में भारत की दशा को अपने पात्रों के द्वारा प्रतीक रूप में अभिव्यक्त किया है। भारत, भारत दुरदेव, अर्ध नग्न निर्लज्जता, स्त्री वेशधारी आशा, मदिरा, सत्यनाथ फ़ौजीदार, रोग, आलस्य आदि भावों को नाटककार ने मानवीकरण की सहायता लेकर मूर्त रूप दिया है। ये भाव प्रतीकात्मक स्तर पर भारत के लोगों की बुराइयों को सामने लाते हैं, ऊपर से देखने से लगता है की ये पात्र वर्ग या समुदाय का प्रतिनिधित्व नहीं करते लेकिन यदि आलस्य रंगमंच पर आता है तो आलसी भारतीयों के समुदाय का बोध करता है। इसी तरह दरिद्रता भारतीय दरिद्र जनता का प्रीतिनिधित्व करती है।

जब नाटक में भारतेन्दु लिखते है। *'अँगरे राज सुख साज सजे सब भारी'* लेकिन इसके तुरंत बाद वह भारतीय धन के पारगमन पर अपनी चिंता जाहिर करते हैं। फिर लिखते हैं कि - *' पै धन बिदेश चली जात इहै अति ख्वारी' ॥* भारतेन्दु ने अंग्रेजी राज सुख - साज पर व्यंग्यात्मक टिप्पणी की है। भारतेन्दु ने एक तरफ तो अंग्रेजी राज साज कह कर राज्यभक्ति को जाहिर किया है। लेकिन उनके मूल में देश भक्ति है। उनको पता था किस प्रकार विदेशी शासन को धोखा देकर अपने देश की सोई हुई जनता को भी जगाना है? इसलिए वह एक पंक्ति में विदेशी राज की तारीफ करते नजर आते हैं। लेकिन अगली ही लाइन में वह अंग्रेज़ी शासन की कूट आलोचना करते हैं। देश की जनता को जगाने का काम करते हैं। जैसे की वह अपनी अगली ही पंक्ति में लिखते हैं कि ' पै धन बिदेश चली जात.. और जनता को संकेत देते हैं कि जाग जाओ नहीं तो ये अंग्रेज लोग सारे धन को विदेश ले जाएंगे। इस तरह भारतेन्दु अपने नाटक **'भारत दुर्दशा'** के द्वारा भारत की जनता के सामने देश की स्थिति का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करते हैं।

इसी तरह अपने अन्य नाटकों में भी यथार्थ का चित्रण किया है। इन नाटकों में आने वाली कविताओं के माध्यम से भी यथार्थ की प्रखर चेतना को अभिव्यक्त दी है। जैसे 'देखी तुम्हारी कासी' भारतेन्दु की प्रसिद्ध कविता है जिस की अभिव्यक्ति उन्होंने अपने 'प्रेमयोगिनी'

नाटक में की है। इस कविता के द्वारा भी उन्होंने सामाजिक चेतना को जगाने का काम किया है। उनके द्वारा रचित 'अंधेर नगरी' प्रहसन तो अपनी आधुनिक चेतना में इतना प्रगल्भ साबित हुआ है कि वह अपने युग के लिए बड़ी सच्चाई था। आज के समय को समझने के लिए भी अंधेर नगरी एक ज़रूरी टूल्स उपलब्ध कराता है। इस नाटक के माध्यम से नाटककार ने अंधविश्वास का चित्रण, प्रशासन के दुष्चक्र का चित्रण, अंग्रेजी शासन का विरोध आदि समस्याओं के यथार्थबोध को स्पष्ट किया है। इस नाटक में शासन व्यवस्था पर व्यंग के द्वारा शासन व्यवस्था की विसंगतियों के यथार्थ को दिखाया। इस नाटक के संदर्भ में डॉ० रामविलास शर्मा लिखते हैं कि "अंधेर नगरी राज्य की अधेरगर्दी की आलोचना ही नहीं, वह इस अंधेरगर्दी को खत्म करने के लिए भारतीय जनता की प्रबल इच्छा भी प्रकट करता है। इस तरह भारतेन्दु ने नाटकों को जनता का मनोरंजन करने के साथ उसका राजनैतिक शिक्षण करने का साधन भी बनाया। इसके गति और हास्य भरे वाक्य लोगों की जुबान पर रच गए है" राजनैतिक शिक्षण का यथार्थबोध करने के लिए वह कहते हैं कि *'अंधेर नगरी अनबुझ राजा। टके सेर भाजी टका सेर* खाजा'। भारतेन्दु ही नहीं, उनके सहयोगियों के कतिपय प्रयास भी इस दिशा में उल्लेखनीय माने जा सकते है।

"भारतेन्दु युग के बाद यो तो छायावाद युग में प्रसाद, उदयशंकर भट्ट, हरीकृष्ण प्रेमी एवं रामकुमार वर्मा आदि ने नाटकों के प्रणयन में एक नया अध्याय जोड़ा, किन्तु जहाँ तक सामाजिक यथार्थ के चित्र का प्रश्न है, नाटकों में उसका उत्कर्ष एक लंबे अंतराल के बाद प्रगतिशील आंदोलनों के दौर में ही दिखाई दिया। प्रगतिशील आंदोलन का उद्भव ही साहित्य रचना में सामाजिक यथार्थ के आग्रह को लेकर हुआ था फलत: प्रगतिशील आंदोलन के साथ अन्य साहित्य की अन्य विधाओं में यथार्थ को वरीयता दी गयी वहाँ मंचन के संदर्भ में सीधे जनता से संबंधित होने के कारण नाटकों की ओर विशेष ध्यान दिया गया"[35] नाटककारों ने

[35] यथार्थवाद – शिवकुमार मिश्र, पृष्ठ स.216

लोक-जीवन की प्रधानता को नाटक के साथ बहुत ही घनिष्ठता से जोड़ने का काम किया है। जिसके कारण अब नाटक की पहुँच शहरों तक ही सीमित नहीं रही बल्कि गाँव के जन-जन तक हो गई है। अब नाटककारों ने जन सामान्य को नाटक की विषयवस्तु का आधार बनाकर नाटकों की रचना की जाने लगी और देश की सच्चाई का यथार्थ रूप समाज के सामने आने लगता है। कहने का मतलब यह है कि सन् १९३६ के बाद हिन्दी नाटकों के क्षेत्र में यथार्थ चित्रण की प्रमुखता को देखा जाता है। रचनाकारों ने इस यथार्थ को अपने नाटकों में अनेक रूपों में उभारा। कथा साहित्य की तरह ही नाटकों की विषयवस्तु का आधार अब मध्यवर्ग के जीवन को ही उसके विविध पहलुओं में उभर जाने लगा। अश्क, उदयशंकर भट्ट, विष्णु प्रभाकर आदि को मध्यवर्गीय जीवन का अंकन करने वाले को नाट्यकार माना जाएगा। नुक्कड़ नाटकों की नयी परंपरा ने नाटकों को ठेठ जनता के बीच पहुंचाने की दिशा में साहसिक प्रयास किया है।

तृतीय अध्याय

‘एक और द्रोणाचार्य’ में यथार्थबोध

3.1 सामाजिक यथार्थबोध

डॉ. शंकर शेष का स्वतंत्रोतर हिन्दी नाट्य साहित्य के विकास में महत्वपूर्ण योगदान रहा है उन्होंने हिन्दी नाट्य साहित्य जगत को विविध आयाम देने की कोशिश की है। नाट्य साहित्य में भारतेन्दु हरिश्चंद्र, जयशंकर प्रसाद, लक्ष्मी नारायण मिश्र और मोहन राकेश आदि को युग निर्माता के रूप में देखा जाता है। शंकर शेष के समग्र नाट्य साहित्य पर नजर उठाकर देखी जाए तो उनके दृष्टिकोण में प्रगतिशीलता का संवाद मिलता है। उनके साहित्य में चीजों को एकलता के स्थान पर समग्रता में देखा गया है। समस्याओं को उद्धृत करने का कार्य सभी नाटककारों ने किया है लेकिन शंकर शेष समस्याओं के उद्धृत के साथ-साथ उसका हाल सामाजिक दृष्टिकोण के द्वारा प्रस्तुत करने का प्रयास करते है, इसी कारण शंकर शेष का नाट्य जगत अन्य रचनाकारों से भिन्न नजर आता है। शंकर शेष अपने युग की चेतना के संवाहक समझे जा सकते है। क्योंकि अपने युग का राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, पृष्ठभूमि के दायरे में मनुष्य को सीमित नहीं किया है, बल्कि उसे केंद्र में रख कर अपनी अनुभूतियों को जिया और भोगा भी है।

साहित्यकार के कंधों पर समाज का दोहरा दायित्व होता है- एक तो सामाजिक जन चेतना को चिन्हित कर मानवीय भाषाओं को परिष्कृत, संस्कारित करना और दूसरा परिवेश से निर्मित मूल्यों की तलाश को उद्घाटित करना। समाज और परिवेश में छाप रही कोई नाटक विशंकर शेष अथवा विचारधारा जब समूचे सामाजिक मानस को आंदोलित विभाजित करती है, तब उससे प्रभावित नाटककार ही होता है। क्योंकि “उसकी विशाल आत्मा अपने देश

बंधुओं के कष्टों से विफल हो उठती है और इस तीव्र विफलता में वह रो उठता है। उसके रूदन में व्यापकता होती है। वह स्वदेश का होकर भी सार्वभौमिक होता है"[1]।

शंकर शेष ने साहित्यकार के दायित्व को बहुत ही प्रभावी ढंग से निभाया है उन्होंने समाज की समग्र समस्याओं पर लिखने का प्रयास किया है जो उनके नाट्य जगत में भली-भाँति देखा को मिलता है। उनके नाट्य जगत में सामाजिक जन-चेतना के मानवीय बिंबों को सहजता से देखा जा सकता है और साथ ही साथ अपने समय की प्रमुख समस्याओं को प्रामाणिकता के साथ अभिव्यक्ति करने का प्रयास किया है। उनकी विशाल आत्मा ने देश की समस्याओं व कष्टों को स्वयं भोगा है, उनकी अभिव्यक्ति में स्वानुभूति का स्वर दिखाई देता है। उनकी यही व्यापकता उन्हें भारतेंदू, जयशंकर प्रसाद, मोहन राकेश आदि नाटककारों से जोड़ने का कार्य करती है। शंकर शेष ने अपने नाट्य साहित्य में अपने समय की सामाजिक विसंगतियों को चिन्हित किया है। चाहें फिर वो नारी की समस्याओं व सत्ता से मोहभंग की समस्या हो या फिर शिक्षा व्यवस्था में फैली विसंगतियाँ हो आदि सभी को बड़ी सच्चाई के साथ अभिव्यक्त किया है।

डॉ० शंकर शेष ऐसे कलाकार है जिन्होंने शिक्षा व्यवस्था की विसंगतियों के यथार्थबोध को अपने नाटक *'एक और द्रोणाचार्य'* के माध्यम से अभिव्यक्त किया है जिसमें उन्होंने महाभारत के गुरु द्रोणाचार्य के माध्यम से आधुनिक जीवन की विसंगतियों को अभिव्यक्त करने का अनूठा प्रयास किया है। इस प्रयास के माध्यम से आज के शिक्षों की स्वार्थ सिद्ध को दिखाने का प्रयास किया है। जबकि वे स्वयं एक अध्यापक थे। इस बात से अनुमान लगा सकते हैं कि वह कितने प्रगतिशील व्यक्तित्व के धनी नाटककार थे। *'एक और द्रोणाचार्य'* के माध्यम से ही शंकर शेष ने भ्रष्ट शिक्षा व्यवस्था के यथार्थबोध को प्रस्तुत किया

[1] साहित्य का उदेश्य - मुंशी प्रेमचंद, पृष्ठ स.25

है और साथ ही समाज में व्याप्त अन्य आधुनिक विसंगतियों को भी दर्शाया है। किस प्रकार सत्ता आधुनिक नारी के विद्रोह को कुचलती है और दूसरी तरफ नारी के उत्थान की बात भी करती है। इस द्वन्द को अभिव्यक्त किया है। शिक्षा व्यवस्था में फैली गुंडागर्दी व शिक्षकों की माला-हालातों को दिखाया है, शिक्षा क्षेत्र में फैली नकल व्यवस्था ने शिक्षा को कैसे बर्बाद कर रही है और नकल के द्वारा प्राप्त शिक्षा से हमारा भविष्य क्या होगा ? आदि प्रश्नो के सामाजिक यथार्थबोध को शंकर शेष ने अपने नाटक *'एक और द्रोणाचार्य'* के माध्यम से दिखाया है।

शंकर शेष ने *'एक और द्रोणाचार्य'* नाटक के माध्यम से शिक्षा व्यवस्था पर बहुत गंभीर सवालों को खड़ा किया है। जिनका उत्तर हमें खोजना ही होगा। यदि हमें अपने शिक्षा व्यवस्था को दुरुस्त करना है तो इन सवालों से लड़ना ही एक मात्र रास्ता है उन्होंने अपना पहला सवाल शिक्षा क्षेत्र में नैतिकता का प्रश्न, दूसरा आधुनिक शिक्षा व्यवस्था का बिगड़ता स्वरूप पर उठाया है। जिसे समय रहते ठीक नहीं किया गया तो उसका खामियाजा समाज को ही उठाना पड़ेगा। तीसरा और महत्वपूर्ण सवाल है नारी के अधिकार और सामाजिक व्यवस्था, यदि नारी के अधिकारों का हनन होता रहा तो, नारियों के लिए आजादी मिलनें का कोई अर्थ नहीं है। नारी के अधिकारों की गारंटी मानवीय अधिकारों को सुरक्षित रखना नहीं है। बल्कि देश के विकास में इसका सीधा-सीधा योगदान है। चौथा सवाल जाति समस्या और समाज का है जो भारतीय समाज में विशंकर शेष महत्व रखता है और पांचवा तथा आखरी सवाल है व्यक्तिवादी और समाज आदि सवालों के द्वारा शंकर शेष ने अपने नाटक *'एक और द्रोणाचार्य'* के सामाजिक यथार्थबोध को प्रस्तुत किया गया है।

शिक्षा के क्षेत्र में नैतिकता का प्रश्न

शिक्षा के क्षेत्र में नैतिकता के प्रश्न को उठाने से पहले हमें नैतिकता के अर्थ को जानना जरूरी होगा। नैतिकता एक दार्शनिक अवधारणा है जिसमें सही और गलत को व्यवस्थित करना, बचाव करना और अनुशंसा करना शामिल होता है। नैतिकता अच्छे और बुरे, सही और गलत, गुण और अन्याय की चिंताओं से संबंधित है। साधारणीकरण के अनुसार समझ जाए तो कहा जा सकता है अच्छे व बुरे, सही और गलत की सही पहचान करके समाज के उत्थान में भागीदारी दर्ज करने वाली बात को स्वीकार करना, ऐसा करने से ही समाज में नैतिकता के स्तर को बचाया जा सकता है। यदि मनुष्य अपने स्वार्थ सिद्ध के लिए बुरा और अन्याय का रास्ता चुनता है और उस में अपनी तरक्की को देखता है यह रास्ता अनैतिकता का है। एक विकसित देश और समाज के लिए नैतिकता का सवाल बहुत जरूरी हो जाता है इस सवाल की जरूरत को शंकर शेष भली-भांति समझते हैं। इसीलिए शंकर शेष ने अपने नाटक *'एक और द्रोणाचार्य'* में इससे चिन्हित किया है किस प्रकार आज शिक्षा संस्थानों में कुछ शिक्षक वर्ग अपने फायदे के लिए समझौतावादी रास्ते पर चलते है जिसका नुकसान देश और समाज को उठाना पडता है। शंकर शेष ने अपने नाट्य साहित्य में आधुनिक समाज जीवन शैली की विसंगतियों को अभिव्यक्ति दी है। उन्होंने सामाजिक पक्ष के अन्तर्गरत आने वाली समाज की समस्याओं, विसंगतियों और विविध आयामों को उजागर किया है वह उनका केवल कल्पना विकास नहीं है अपितु वह उनका देखा हुआ, जिया हुआ, भोग हुआ यथार्थ है। शिक्षा के क्षेत्र में नैतिकता का प्रश्न भारतीय गरिमा पर कलंक है यह कलंक दीमक की तरह है। जो हमारी शिक्षा व्यवस्था को खाए जा रहा है जिसके कारण आज शिक्षा के क्षेत्र ने अनैतिकता का प्रसार दिनों दिन बढ़ता ही जा रहा है। इस बात को स्वयं शंकर शेष उठाते हैं जबकि वह खुद एक अध्यापक के पद पर कार्यरत थे। यह कितनी बड़ी विडम्बना है एक अध्यापक अपने क्षेत्र में अनैतिकता को स्वयं चिन्हित करता है। ऐसा करने पर स्वयं शिक्षा

व्यवस्था ने उनको मजबूर किया और यही खासियत उनको प्रगतिशीलता के दायरे में ला खड़ा करती है। शिक्षा क्षेत्र में बढ़ती अनैतिकता का चित्रण वह अपनी कृति *'एक और द्रोणाचार्य'* में करते हैं। आज आदर्श और नैतिकता केवल दिखावा भर रहा गया है। अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए कुछ शिक्षक आज ईमानदारी को बेच डालते है। *'एक और द्रोणाचार्य'* में लीला और प्रिंसिपल के आपसी संवाद के माध्यम से शंकर शेष इस बात को स्पष्ट करने की कोशिश करते हैं, कि किस प्रकार आज कुछ शिक्षक अपने लाभ के लिए नैतिकता को किनारे कर देते है। प्रिंसिपल लीला से कहता है

"प्रिंसिपल: हाँ, मुझे! इस बूढ़े को, पर क्या करें ? सहना होगा!

नौकरी करनी है, तो लात भी खानी पड़ेगी !

लीला: लेकिन राजकुमार ने नकल की ?

प्रिंसिपल: अब मुझसे पूछकर तो की नहीं। थोड़ी सी कर ही ली,

तो किसका क्या बिगड़ गया ? जिसका पाप उसके साथ!

अपने बाप का क्या जाता है"[2]।

प्रिंसिपल लीला से ये सब इसलिए कहता है क्योंकि लीला के पति अरविन्द कॉलेज में लेक्चरर होते है वह परीक्षा में राजकुमार को नकल करते पकड़ लेते हैं जिसके कारण प्रिंसिपल की नौकरी खतरे मेंआ जाती है क्योंकि राजकुमार के पिता कॉलेज के प्रेसीडेंट होते है और अरविन्द नकल का केस बना देता है और रिपोर्ट कर देता है इसलिए प्रिंसिपल लीला को घर पर समझाने आते हैं। लेकिन सोचने की बात है यदि एक शिक्षक अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए अन्याय का साथ देगा तो शिक्षा क्षेत्र में नैतिकता कहाँ तक बच सकती है ? प्रिंसिपल

---

[2] नाटक 'एक और द्रोणाचार्य'- शंकर शेष , पृष्ठ स.11 ; प्रकाशन परमेश्वरी, दिल्ली-92

का ये कहना कहां तक सही है कि *'थोड़ी सी कर ली तो किसका क्या बिगड़ गया'* आज शिक्षा क्षेत्र में प्रतिस्पर्धा निरंतर बड़ती जा रही है लेकिन विद्यार्थी मन लगाकर हर एक कठिन परिस्थितयों में दिन रात मेहनत करता है। जो सपने उसने देखे हैं उन्हे वह पूरा करना चाहता है। लेकिन उसका मन जब बैठ जाता है जब परीक्षा केंद्र मेंनकल चलती है। (थोड़ी सी) और जिसके कारण वह परीक्षा के परिणाम में वह कुछ पॉइंटों से रह जाता है। अब सवाल यहां यह खड़ा होता है इसका असली दोषी कौन है ? दूसरी तरफ जो लोग सत्ता में अपने आदमी से अपना काम निकलवाकर परीक्षा में पास करते है और नौकरी पा जाते हैं लेकिन सही मायने में उस नौकरी का सही हकदार कौन है ? और शिक्षा के क्षेत्र में बढ़ती इस अनैतिकता के हमें बहुत गंभीर परिणाम देखने को मिलते हैं। इसका सीधा असर छात्रों के जीवन पर देखा जाता है। जिसके कारण बड़े शिक्षा संस्थानों में प्रवेश न पाने के कारण आत्महत्या के केसों की संख्या दिनों दिन बढ़ती जा रही है। *राष्ट्रिय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो (NCRB) के आँकड़े बताते हैं कि हर 55 मिनट में देश में 5, जब कि महाराष्ट्र में 1 स्टूडेंट आत्महत्या करता है। पिछले 5 साल में स्टूडेंट द्वारा आत्महत्या करने के मामलों में करीब 82 प्रतिशत की वृद्धि हुई है"*[3]।

प्रिंसिपल का यह कहना कहाँ तक सार्थक है कि *'अपने बाप का क्या जाता है'* ऐसी मानसिकता के शिक्षकों की संख्या आज शिक्षा क्षेत्र में निरंतर बड़ती जा रही है। जो शिक्षा के क्षेत्र में नैतिकता के प्रश्न पर अनेकों सवाल उठा रही है और यह समस्या केवल सामाजिक समस्या नहीं है जबकि इसका सीधा असर देश के विकास पर पड़ता है। लेकिन ऐसा क्यों हो रहा है इसका जिम्मेदार कौन है ? ये सवाल अभी हल नहीं हुए है। इस अनैतिक प्रवृति ने कुछ शिक्षको की मानसिकता पर गहरा प्रभाव छोड़ा है जिसके कारण वह संकुचित मानसिकता के

[3] इंटरनेट से आभार

साथ कार्य करने को बाधित होता चला जा रहा है इस बात को भी लेखक अपने नाटक में प्रिंसिपल और लीला के संवाद से स्पष्ट किया है।

"लीला: फिर भी

प्रिंसिपल: अब तुम समझती नहीं। नकल बंद हो, चाहे न हो। कॉलेज जरूर बंद हो जाएगा। नौकरी जरूर जाएगी। बुरे दिन इन्हें कहते है ?

लीला: क्या बात इस हद तक जा सकती है ?

प्रिंसिपल: इस हद तक ! नही, इससे भी आगे जा सकती है। प्रसिडेंट साहब आखिर मालिक हैं, अन्नदाता हैं। उनका कॉलेज उनकी मर्जी। इसीलिए तो कहता हूँ, नौकरी करनी है तो कान बंद कर लो। आँखें मूँद लो! मुँह खुला रखो बोलने के लिए नहीं, रोटी खाने के लिए"[4]

समय रहते हमें इस समस्या के निवारण की खोज करनी होगी। यह संकुचित मानसिकता सामाजिक विकास के साथ-साथ देश के विकास के लिए घातक साबित हो सकती है। यह संकुचित मानसिकता नहीं गुलाम मानसिकता है। जैसे प्रिंसिपल कहता है 'मुँह खुला रखो बोलने के लिए नहीं रोटी खाने के लिए'। यह कोई साधारण बात नहीं हैं हमारा संविधान हमें बोलने की आजादी देता है इसका प्रावधान अनुच्छेद 19(1)a में प्रत्येक नागरिक को अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार प्रदान किया गया है। शिक्षा के क्षेत्र में नैतिकता का प्रश्न हमारे नागरिक अधिकारों का उल्लंगन करता है। अनैतिकता अप्रत्यक्ष रूप में नागरिक अधिकारों पर आक्रमण करती है। गुलाम मानसिकता के द्वारा हमारे उज्ज्वल भविष्य की कामना करना एक निरर्थक बात है। शंकर शेष ने एक द्रोणाचार्य के इन संवादों के माध्यम से

[4] नाटक 'एक और द्रोणाचार्य - शंकर शेष , पृष्ठ स.11 ; प्रकाशन परमेश्वरी, दिल्ली-92.

शिक्षा के क्षेत्र में नैतिकता के प्रश्न को सशक्त और पुरजोर ढंग से उठाया है तथा इस सत्य का पर्दाफाश किया है और सामाजिक यथार्थबोध को स्पष्ट किया है।

आधुनिक शिक्षा व्यवस्था का बिगड़ता स्वरूप

आधुनिकता अच्छी कारों, महलों, अच्छे कपड़े, पहनने से नहीं आती आधुनिकता का सीधा संबंध विचारों से होता है। आधुनिक समाज और आधुनिक दौर उसे ही कहा जाता है जिसके विचारों में प्रगतिशीलता है। आधुनिकता के संबंध में *चंद्रभान रावत* लिखते हैं "आधुनिकता युगसंदर्भ की भावना नहीं है। यह कथन स्पष्ट संकेत करता है कि आधुनिकता होने का मतलब आज का, इस दशक या शताब्दी का होना नहीं है! असल में आधुनिक होना समय हीन होना है। और भी सीधे कहें तो कह सकते है। आधुनिक होना शाश्वत होना है। आधुनिकता की समस्या काल सापेक्ष कम, व्यक्ति सापेक्ष ज्यादा है"[5] "आज भारत की साक्षरता दर बहुत नीचे है। विकसित देशों की बात छोड़े यह अपने कई एशियाई देशों की तुलना में भारत शिक्षा के मामले में पीछे है। भारत में साक्षरता का वर्तमान दर 74.04 है, जो विश्व के 84.1 फीसदी से 81 की नीचे है। इसी समय के दौरान भारत के पड़ोसी म्यांमार का साक्षरता दर 89.09 फीसदी है। श्रीलंका की साक्षरता दर हमसे कहीं ज्यादा 92.6 फीसदी है "[6]। इसका सीधा कारण शिक्षा व्यवस्था का बिगड़ता स्वरूप है। कहने को हम आधुनिक और 21वीं सदी में जी रहे है लेकिन यदि शिक्षा में साक्षरता को देखे तो मध्यकाल से कुछ ज्यादा अच्छी हालत नहीं है। माना जा सकता है कि पहले से आज की स्थिति ठीक हुई है, लेकिन आज की तुलना में शिक्षा व्यवस्था की स्थिति बहुत ठीक नहीं है। शिक्षा व्यवस्था के बिगड़ते रूप के अनेक कारण हो सकते हैं। लेकिन सबसे प्रमुख कारण है शिक्षा व्यवस्था में

[5] समकालीन हिन्दी साहित्य - संपादक, वेद प्रकाश शर्मा, कृष्णचंद पांडे, पृष्ठ -१ ; जनाहर पुस्तकालय मथुरा
[6] By Raj Kumar Hindi News India, u.p

बढ़ती गुंडागर्दी और अवसरवादिता जो कल भी मौजूद थी और आज भी है, इन दोनों कारणों को शंकर शेष ने अपने नाटक 'एक और द्रोणाचार्य' में दिखाया है।

"लीला: आखिर हो क्या गया है?

यदू: जानती हो! आज इसने प्रेसीडेंट के लड़के को ही नकल करते हुए धर दबोचा

लीला: यानि राजकुमार को ?

यदू: हाँ राजकुमार को! शहर के सबसे बड़े गुंडे को। (विराम)

अरविन्द से: सब कुछ जानते हुए भी तुम्हारी अक्ल पर पत्थर क्यों पड़ जाते है"[7] ?

आज भी सत्ता के ऊंचे पदों पर आसीन लोगों के बच्चे शिक्षा संस्थानों में गुंडागर्दी करके होते है क्योंकि वह ऐसे घरों से आते है जिनके संबंध सत्ता में बैठे लोगों से होते है अपनी सत्ता का दुरुपयोग करके पास होने की कोशिश करते हैं वह पास भी हो जाते हैं और बिना ज्ञान के डिग्रियाँ पा जाते हैं और सरकारी पदों पर बैठते हैं। शिक्षा व्यवस्था में अवसरवादी लोगों के होने से यह समस्या बढ़ती जा रही है। कुछ शिक्षक जो अपने सिद्धांतों और नैतिकता के आधार पर कोई कार्यवाई करना चाहता है तो उसे भी अपने नौकरी या जान तक खोने का खतरा बना रहता है अक्सर ऐसा भी देखने को मिलता है। शिक्षक भी एक सामाजिक प्राणी है। उसका भी अपना जीवन और परिवार होता है। इस गुंडागर्दी के कारण उसे चुप करवाया जाता है। कभी परिवार के तरफ से, तो कभी सत्ता के दुरुपयोग करने वाले की तरफ से। अरविन्द एक शिक्षक होने के नाते अपना नैतिक धर्म निभाता है। लेकिन गुंडागर्दी व नौकरी छूट जाने के डर से यदू अरविन्द को ही उल्टा धमकाता है और उससे इस मसले से बचने की सलाह देती है-

[7] शंकर शेष , नाटक 'एक और द्रोणाचार्य' प्रकाशन परमेश्वरी, दिल्ली-92, पृष्ठ 6

“अरविन्द: छुरा सामने रखकर नकल जो कर रहा था, कैसे छोड़ देता?

यदू: अब तुम्ही बचे हो, साले ईमानदारी और सच्चाई की औलाद! आराम से रहना किस्मत में बदा हो तब न”[8] !

यदू भी एक शिक्षक है। जो इस व्यवस्था से समझौता कर चुका है। लेकिन इस व्यवस्था से समझौता करना, कहाँ तक सही है ? ये सवाल आज बहुत बड़ा होता जा रहा है। आज अरविन्द जैसे अध्यापक जो अपने सिद्धांतों पर कार्य करना चाहते हैं और गुंडागर्दी की व्यवस्था के सामने घुटने नहीं टेकना चाहते हैं उसका प्रतिनिधित्व करता है लेकिन अंततः यह देखा जा रहा है कि अरविन्द जैसे अध्यापकों पर सत्तापक्ष, पारिवारिक पक्ष के द्वारा असहनीय दबाव बनाया जाता है और इस स्थिति में उसे अपने जमीर से सौदा करना पड़ता है। यही समझौतावादी प्रीतिक्रिया ही आधुनिक शिक्षा-व्यवस्था के बिगड़ते स्वरूप का सबसे महत्वपूर्ण कारण है और दूसरा कारण अवसरवादिता है। अवसरों के लोभ को दिखाकर किस तरह एक सिद्धांतिक शिक्षक को भी हार स्वीकार करनी पड़ती है। उसका जीता जागता उदाहरण अरविन्द (पात्र) के द्वारा प्रस्तुत किया है। प्रेसीडेंट अरविन्द के घर आता है और लीला के सामने अरविन्द को अपनी रिपोर्ट वापसी लेने के लिए प्रिंसिपल बनाने का अवसर देता है, इस अवसर के सामने लीला जो कि अरविन्द की पत्नी है। वह इसे स्वीकार करने की बात अरविन्द को कहती है और इस झंझट से अपने आप को निकालो। सजा दिलवाकर आपको कुछ नहीं मिलेगा बल्कि दूसरी तरफ आप अपने दुश्मन पैदा कर लोगे। इससे अच्छा है कि प्रेसीडेंट की बात को मान लों यही तुम्हारे लिए और अपने परिवार के लिए ठीक रहेगा ।

“लीला: फिर प्रेसीडेंट इन्हें प्रिंसिपल बनाने की भी तो कह रहा है।

---

[8] शंकर शेष , नाटक ’एक और द्रोणाचार्य’ प्रकाशन परमेश्वरी, दिल्ली-92, पृष्ठ 6

यदू: तो जाओ, प्रिंसिपल बन जाओ! मेरा वाइस प्रिंसिपल का रास्ता बनाओ । तुम प्रेसीडेंट का साथ दोगे तो वह भी तुम्हारा साथ देगा”[9]

अवसरवादित्ता के सामने किस तरह आज के शिक्षक अपने सिद्धांतों के साथ समझौता कर लेते हैं। इस सामाजिक यथार्थबोध को बहुत ही अच्छे ढंग से शंकर शेष ने प्रस्तुत किया है।

शंकर शेष ने महत्वाकांक्षी, उत्तरदायित्व विहीन, समझौता-परत, मुखौटा वादी एवं पलायन नियति भोगने वाली इस मानसिकता के शिक्षकों को भी फटकार लगाते हुए कहते हैं "कुल मिलाकर शिक्षक के रूप में तुमने उसे क्या दिया? अर्थशास्त्र पर भाषण। माल्थस, पीगू और केस के सिद्धांत। ये तो किताबों से भी पढे जा सकते थे। सवाल है तुमने क्या दिया”[10]?

आज कुछ एक शिक्षक अवसरवादिता में इतना घुलते जा रहे है कि वह पाठ्यक्रम तक ही अपनी बातों को सीमित रखता है। इससे अन्यतर वह बात ही करने की कोशिश नहीं करते हैं। क्या सही है क्या गलत है। इस पर कक्षा में कोई चर्चा नहीं होती। चर्चा न करने के अन्य कारण बहुत है लेकिन ऐसा न करना स्वस्थ शिक्षा व्यवस्था का प्रतीक नहीं है। उपर्युक्त सभी कारणों की वजह से आज आधुनिक शिक्षा का स्वरूप निरंतर बिगड़ता जा रहा है। इस सामाजिक यथार्थबोध को शंकर शेष स्पष्ट कारण चाहते है।

नारी का अधिकार और सामाजिक व्यवस्था

भारतीय समाज में स्त्रियां निरंतर उपेक्षा एवं प्रताड़ना का शिकार होती रही हैं। भारतीय समाज में प्रायः पुरुषवादी सत्ता का ही वर्चस्व बना रहा है। जो आज भी कायम दिखाई देता है। कहने को हम 21वीं सदी में आ गए हैं। लेकिन भारतीय सामाजिक व्यवस्था में जो

[9] नाटक 'एक और द्रोणाचार्य' - शंकर शेष , पृष्ठ स.22 ; प्रकाशन परमेश्वरी, दिल्ली-92.

[10] नाटक 'एक और द्रोणाचार्य'- शंकर शेष , पृष्ठ स.74 ; प्रकाशन परमेश्वरी, दिल्ली-92.

परिवर्तन होना चाहिए था वह नहीं हुआ आज भी पुरुषवादी मानसिकता के कारण नारी के अधिकारों पर समाज में हमला देखा जा सकता है। पुरुषवादी मानसिकता ने स्त्रियों को कभी समानता का दर्ज प्रदान किया ही नहीं। आज के समय में भी पुरुषवादी मानसिकता से ग्रसित लोग स्त्रियों को मात्र एक वस्तु समझते हैं, तो हम किस प्रकार यह कह सकते हैं कि भारतीय सामाजिक व्यवस्था में नारी के अधिकार सम्पूर्ण रूप से सुरक्षित देखे जा सकते हैं।

नारियों की आजादी के समग्र मार्ग स्वार्थवश हमारी समाज ने अवरुद्ध किए हुए हैं। वह उसी बंधक व्यवस्था में आजीवन छटपटाती रहती हैं। कुछ एक जगह में आज भी जानवरों से भी बदतर जीवन जीने के लिए भारतीय सामाजिक व्यवस्था में स्त्रियां विवश एवं अभिशप्त हैं। आज भी उन्हें सम्मान से जीने के लिए संघर्ष करना पड़ रहा है। आज भी वे प्रत्येक क्षण पुरुषवादी मानसिकता का शिकार हो रही है। यह स्थिति केवल अनपढ़ नारी के साथ ही नही आज इस आधुनिक युग की शिक्षित नारी को भी इस पुरुषवादी मानसिकता के द्वारा पीड़ित होना पड़ता है। भारतीय नारी की दुर्दशा एवं उनकी समाज में बढ़ती जा रही असुरक्षा के संदर्भ में *ज्ञानेन्द्र रावत* ने उचित ही लिखा है, उनके अनुसार "हमारे समाज में नारी प्रतिपल किसी सीमा तक भेदभाव, अन्याय, जुल्म, शोषण, उत्पीड़न की शिकार होती है उसे सम्मान तो दिखावे के तौरपर कुछ फीसदी लोगों द्वारा ही मिल पाता है। जबकि असलियत यह है कि अधिकाशतः उसे हर मोर्चा पर पुरूष के अहंकार का शिकार होना पड़ता है। फिर वो चाहे घर हो, परिवार हो, दफ्तर हो, बस हो, रेल हो, सड़क हो या खेत और खलियान हो, पंचायत हो या फिर मजिस्ट्रेट का चैंबर, हर जगह उसे अपमान घृणा का सामना करना पड़ता है और इंसानियत को ताक पर रख कर हैवानियत से भरे नर-पिशाचों की शैतानी भूख और षड्यन्त्र का शिकार होना पड़ता है"[11]। इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता है कि शिक्षा के कारण स्त्रियों की स्थिति में धीरे-धीरे ही सही लेकिन परिवर्तन हो रहा है। लेकिन यह कहना

[11] औरत : एक समजशास्त्रीय अध्ययन - संपादक ज्ञानेन्द्र रावत,पृ स. 108

उचित नही है की स्त्रियों के जीवंदश में अपेक्षित परिवर्तन हुआ है। वे आज भी समाज में शिक्षण संस्थानों में किसी न किसी रूप में प्रताड़ित हो रही हैं। बड़ी विडम्बना की बात है कि आज 21वीं सदी में नारियों की स्थिति में जो परिवर्तन होना अपेक्षित था वह देखने को नहीं मिलता है। आज की नारियों पर अन्याय, अत्याचार होने की घटनायें निरंतर समाचार पत्रों में छपकर आती हैं। जबकी भारतीय संविधान ने नारी को समान अधिकार प्रदान किए है। उसे मतदान करने का अधिकार दिया है तथा पिता की सम्पत्ती में हिस्सा प्राप्त करने का भी अधिकार है। महिला आरक्षण एवं शिक्षा ने उनमें नए आत्मविश्वास का संचार किया है और अब वे प्रत्येक क्षेत्र में सक्रिय भूमिका का निर्वाह भी कर रही हैं आज वे बड़े-बड़े पदों पर कार्यरत है। पुलिस, प्रशासन, न्याय, शिक्षा, जैसे क्षेत्रों में उन्होंने योग्यता के झंडे गाड़े हैं और निरंतर गाड़ भी रहीं हैं। राजनीति में प्रधानमंत्री स्वर्गीय इंदिरा गांधी ने नारी के गौरव को स्थापित किया। लेकिन इतना कुछ बदलाव आने के बाद भी आज नारी के अधिकारों का हनन देखने को मिलता है। आज भी निर्भया, प्रियंका रेड्डी, हत्थरास जैसे रेपकांडों को अंजाम दिया जा रहा है। आज भी पुलिस, प्रशासन, न्याय, शिक्षा जैसी संस्थानों में नारी के अधिकारों को कुचला जा रहा है। आज भी लड़कियों को आठ बजे रात में बाहर जाने की अनुमति नहीं दी जाती है। नारी के विरुद्ध अपराध, हत्या-रेप आदि घटना घटने के नाम नहीं ले रही है, प्रतिवर्ष इस घटना में बढ़ोतरी हो रही है। इस बात को NCRB रिपोर्ट (2020) की रेप ओ आर टी प्रमाणित करती है।

"NCRB रिपोर्ट : राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरो के आंकड़ों से खुलासा हुआ है कि कोरोना महामारी से प्रभावित साल 2020 के दौरान अपराध के मामलों में 2019 के तुलना में 2.8 फीसदी की वृद्धि दर्ज की गई है। 20 मार्च 2020 से 21 मई 2020 तक कोरोना महामारी के कारण देश में लॉकडाउन लागू था, यदि रेप के मामलों पर नजर डाला जाए तो पूरे देश में

2020 में बलात्कार के हर दिन औसतन करीब 77 मामलें दर्ज किए गएँ"[12]। जबकि यह मामले वह है, जिन्होंने अपने साथ हुए गलत कार्य को कानूनी रूप से लड़ने का साहस दिखा है और ऐसे मामलों की कोई गिनती ही नहीं होगी जो अपने साथ हुए अपराध के साथ ही किसी ना किसी डर से जिंदगी जी रहे हैं। यदि यह आँकड़े भी सामने आ जायें तो ऊपर दिए गए आँकड़े कई गुणा बढ़ सकते है। शिक्षण संस्थाओं में नारी पर होने वाले शोषण की सच्चाई को शंकर शेष ने अपने नाट्य साहित्य में उजागर करने का कार्य किया जबकि वह स्वयं एक अध्यापक थे तो इसका मतलब उन्होंने स्वयं इस बात का अनुभव शायद किया होगा। शिक्षण संस्थानों में नारी के शोषण किस प्रकार हो रहे हैं। नारी को किस तरह प्रताड़ना का सामना करना पड़ता है, किस तरह नारी के अधिकारों की आवाज को सामाजिक व्यवस्था कुचलने का कार्य करती है। वह कौन से कारण हैं जो आज की शिक्षित नारी होने के कारण भी अपनी अस्मिता को बचाने के लिए उसे संघर्ष करना पड़ता है। इन सभी बातों को केंद्र में रखते हुए शंकर शेष ने अपनी कृति *'एक और द्रोणाचार्य'* नाटक में नारी पात्र 'अनुराधा' के द्वारा नारी के अधिकारों हनन व शोषण किस तरह आज शिक्षण संस्थानों में हो रहा है। किस तरह नारी आज अपने आप को असुरक्षित पाती है। उसे नारी पात्र अनुराधा के द्वारा स्पष्ट करने का प्रयास किया है। नाटक में नारी पात्र अनुराधा कॉलेज के बगीचे में अपने दोस्त (प्रेमी) का इंतजार कर रही होती है। लेकिन एकांत का फायदा उठाने के लिए प्रेसीडेंट का लड़का वहाँ पहुंचता है और अनुराधा के साथ वहाँ रेप करने की कोशिश करता है। लेकिन चिल्लाने की आवाज सुनकर अरविन्द (प्रिंसिपल) वहाँ पहुँचता है और अनुराधा को बचाता है।

"अरविन्द: कॉलेज बिल्डिंग के पीछे का बगीचा तुमने देखा है न, वही। चार बजे थे कॉलेज से लड़के चले गए थे (विराम) मैंने सोचा, गुलाब की नई कलमों को देख आऊँ।

[12] इन्टरनेट से साभार

यदू: तो

अरविन्द: हैज के पास पहुंचा तो लड़की की भयानक चीख सुनाई पड़ी, मैं दौड़ा। देखा तो राजकुमार अनुराधा पर... वह छटपटा रही थी। ईट वाज हौरीबुल। (विराम) मैंने राजकुमार को फटकारा। भाग गया साला। अनुराधा फूट-फूटकर रोटी रही"[13]।

अरविन्द और यदू के इस संवाद के माध्यम से शंकर शेष ने यह दिखने की कोशिश की है। किस प्रकार अनुराधा जैसी नारी शिक्षण संस्थानों में शोषण का शिकार होती है। किस प्रकार सत्ता के दुरुपयोग के कारण नारी के अधिकारों को कुचला जाता है। राजकुमार जैसे लोग किस तरह अपनी शक्तियों का अलग प्रयोग करके नारी की स्वतंत्रता को छीनने की कोशिश करते है। इस तरह की घटनाएँ आज भी शैक्षणिक संस्थाओं में नारियों के साथ घटित होती हैं , शंकर शेष इस यथार्थ को उजागर किया है। कहने को नारी स्वतंत्र है लेकिन पुरुषप्रधान मानसिकता के द्वारा आज नारी के अधिकारों पर आक्रमण किया जाता है। इस यथार्थबोध को दिखाने का कार्य डॉ शंकर शेष करते है। किस तरह विद्यालय जो विद्या का मंदिर कहा जाता है। वहाँ पर पुरुषवादी मानसिकता अपनी गंदगी फैला रही है। इस यथार्थबोध को उद्घाटित किया है।

नारी के यौन शोषण की घटनाओं को सत्ता का दुरुपयोग करके दबाने की कोशिश की जाती है। उस समस्या को शंकर शेष ने प्रस्तुत नाटक 'एक और द्रोणाचार्य' के एक प्रसंग के माध्यम से उजागर किया है। किस प्रकार शोषण पीड़िता (अनुराधा) के साथ-साथ उसके परिवार को धमकियां दी जाती हैं, उनको डराया जाता है। नाटक में यह प्रसंग इस प्रकार है-

"अनुराधा: जानते हैं, मेरे पिता को धमकाया जा रहा है।

[13] नाटक 'एक और द्रोणाचार्य' - शंकर शेष , पृष्ठ स.41 ; प्रकाशन परमेश्वरी, दिल्ली-92.

अरविन्द : कौन धमका रहा है ?

अनुराधा : राजकुमार और उसके साथी।

अरविन्द : क्या धमकी दी है ?

अनुराधा : मेरे पीछे गुंडे लगाने की। राजकुमार जो कुछ नहीं कर पाया, उसे पूरा करवाने की। मेरे पिता को जान से मारने की"[14]।

मध्यमवर्गीय परिवार अपनी इज्जत बचाने और डर के कारण अपनी लड़की के शोषण से समझौता करने के लिए मजबूर हो जाता है और लड़ाई से दूर भागने की कोशिश करता है, मध्यमवर्गीय परिवार आज ऐसा करने के लिए क्यों मजबूर है ? क्यों वह अपने अधिकारों की लड़ाई लड़ने से बचना चाहता है ? उसे किस बात का डर है ? क्या उसे भारतीय संविधान पर विश्वास नहीं है या उससे देश की न्याय व्यवस्था पर से उसका भरोसा उठ गया है ? तमाम सवाल मन को घेर लेते है। इस सच्चाई को उद्घाटित करने का प्रयास शंकर शेष अरविन्द और अनुराधा के प्रसंग द्वारा स्पष्ट करना चाहते हैं।

"अरविन्द: तुम लोग पुलिस में रिपोर्ट क्यों नहीं करते?

अनुराधा: जब मेरे माता पिता बात को बढ़ाना ही नहीं चाहते तो रिपोर्ट क्यों करेंगे ? (विराम) उन्होंने तो मुझसे भी साफ कह दिया है कि यदि मैंने रिपोर्ट पर जोर दिया तो मुझे घर से बाहर निकाल देंगे"[15]।

जब भी किसी लड़की के साथ बलात्कार की कोशिश होती है या बलात्कार होता है, तो ये आम बात है कि उसके परिवार वाले उसका कम ही साथ देते दिखाई पड़ते है जिसके

---

[14] नाटक 'एक और द्रोणाचार्य' - शंकर शेष , पृष्ठ स.47 ; प्रकाशन परमेश्वरी, दिल्ली-92.

[15] नाटक 'एक और द्रोणाचार्य'- शंकर शेष , पृष्ठ स.47 ;प्रकाशन परमेश्वरी, दिल्ली-92.

बहुत से कारण हो सकते है जैसे सामाजिक छवि को खराब न होने देना, मीडिया द्वारा स्वार्थ साधने का डर, आर्थिक रूप से सम्पन्न न होना आदि ऐसी स्थिति में एक नारी जिसके साथ शोषण की वारदात हुई है। तो वह किस प्रकार अपने अधिकारों की लड़ाई लड़ पाएगी और सामाजिक व्यवस्था नारी के अधिकारों को किस प्रकार उससे उसके अधिकार छीन लेती है। अनुराधा के माध्यम से शंकर शेष ने इस घटना का मार्मिक चित्रण किया है दूसरी तरफ पारिवारिक सहायता न मिलने पर भी जो नारी अपने अधिकारों की लड़ाई लड़ने का साहस करती है। वह किस प्रकार अवसरवादियों के कारण अपनी हार स्वीकार करती है। इस घटना को शंकर शेष ने इस प्रसंग के द्वारा स्पष्ट किया है।

"अनुराधा: तो मैं आपके शब्दों पर विश्वास करती हूँ। इस मामले में आप ही एक मात्र गवाह हैं। आप बदल गए तो मैं कहीं मुँह दिखाने लायक नहीं रहूँगी। और तो और वह भी मुझसे घृणा करने लगेगा।

अरविन्द: तुम निश्चिंत रहो। अब तुम्हारी लड़ाई मेरी लड़ाई है"[16]।

लेकिन अरविन्द प्रेसीडेंट के साथ अंत में समझौता कर लेता है। क्योंकि प्रेसीडेंट उसे एक झूठे केस के मामले में जेल भेजने की साजिश करता है। जिसके कारण वह अनुराधा का साथ छोड़कर प्रेसीडेंट का साथ देता है। इस अवसरवादी मानसिकता के कारण अनुराधा आत्महत्या कर लेती है और अनुराधा अपनी लड़ाई में हार जाती है।

अरविन्द: हैलो.. क्या कहा एक्सीडेंट? कैसा एक्सीडेंट? क्या? हमारे कॉलेज की लड़की ट्रक के नीचे आ गई ? क्या नाम था उसका ? क्या कहा अनुराधा ? (रीसीवर उसके हाथ से छूट जाता है)

[16] नाटक 'एक और द्रोणाचार्य'- शंकर शेष , पृष्ठ स.49 ;प्रकाशन परमेश्वरी, दिल्ली-92.

21वीं शताब्दी की सामाजिक व्यवस्था में भी नारी अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करती दिखाई देती है लेकिन कुछ ही केसों में उसे न्याय मिलता है नहीं तो उसे, अपनी आत्महत्या से समझौता कर लेती है। ऐसा कुछ मामलों को छूटकर अधिकतर मामलों का यही परिणाम हमारे सामने होता है। इस प्रकार के शंकर शेष शैक्षणिक संस्थान में नारी कितनी सुरक्षित है और वह किस प्रकार अपनी शोषण की लड़ाई को हार जाती है। इस दुख भरी व्यथा को उन्होंने अभिव्यक्त किया है।

व्यक्तिवाद और समाज

व्यक्तिवाद और समाज की संकल्पना को समझने से पहले व्यक्तिवाद की सीमाओं को समझना आवश्यक हो जाता है। व्यक्तिवाद को सामाजिक संकल्पनों से पूर्ण स्वतंत्रता, विषय के अपने मानदंडों के अनुसार सोचने और कार्य करने की प्रवृत्ति के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। हालांकि ऐतिहासिक संदर्भ के आधार पर, व्यक्तिवाद के अलग-अलग अर्थ हो सकते हैं। विशंकर शेष रूप से 20वीं सदी की दूसरी छमाही से, उपभोक्तावाद की विजय के साथ, व्यक्तिवाद को समाज और उसके मूल्यों से अलग करने की प्रवृत्ति के रूप व्याख्या की जाती है। साथ ही न केवल सोचने के लिए और कार्य करने की प्रवृत्ति के रूप में स्वयं के हित लेकिन व्यक्तिगत सुख और आत्म संतुष्टि के। दूसरे शब्दों में जातिवाद के समान अर्थ में इसे अहंकारवाद, संकीर्तवाद, वंशवाद और उपभोक्तावाद के संयोजन के रूप में समझ जाता है, इस तरह देखा जाए तो व्यक्तिवाद नैतिक सम्मान की रक्षा नहीं करती है। बल्कि जीवन का एक अनिश्चित तरीका है। जो लोगों को अमानवीय बनाता है।

शंकर शेष अपने नाट्य एक और द्रोणाचार्य में व्यक्तिवाद को समानार्थी शब्दों, अहंकारवादी, उपभोक्तावादी, समझौतावादी, अवसरवादी और अमानवीयता के रूप में अभिव्यक्त करते है। यह प्रवृत्ति भारतीय समाज में सामाजिक विसंगति को जन्म दे रही है

जिसके कारण समाज में मानवीयता का धीरे-धीरे पाटन होता जा रहा है। अपने स्वार्थ के कार्य के लिए व्यक्ति किसी भी हद तक जा सकता है जहां पर मानवीयता खुद से शर्मशार जाए। शंकर शेष ने अपने नाटक में अनेक प्रसंगों के माध्यम से व्यक्तिवाद किस तरह समाज की नैतिकता व मानवीयता की दीवारों को ढाहता हुआ आगे निकल रहा है जिसके कारण समाज में अनेकों कुरीतियाँ जन्म ले रही हैं। इस यथार्थ बोध को प्रस्तुत करने का प्रयास शंकर शेष 'एक और द्रोणाचार्य' नाटक के द्वारा स्पष्ट करते है।

शंकर शेष के इस नाटक में उपभोक्तावादी मानसिकता किस तरह काम कर रही है, जिस समाज को हम आधुनिक समाज कहते हैं उस समाज में उपभोक्तावादी मानसिकता के कारण व्यक्ति अपने लाभ के लिए ही अधिक कार्य करता नजर आता है। इस उपभोक्तावादी मानसिकता को डॉ शंकर शेष ने इस प्रसंग से स्पष्ट किया है।

"अरविन्द: लड़का पास होने लायक नहीं था तो मैं क्या करूँ?

लीला: पास होने लायक होता तो तुमसे ये कहता ही क्यों ? सिन्हा क्या सोचेगा, सोचा भी है! अच्छे अहसानफरामोश लोग हैं !

अरविन्द: क्या एहसानफरमोशी की मैंने ?

लीला: तुम्हें यह नौकरी किसके कारण मिली? यह मकान? अस्पताल में सुविधाएँ कौन दिलवा रहा ? दो नंबर बढ़ा ही देते तो कौन सा आसमान फट जाता है"[17]।

शिक्षण संस्थानों में आज उपभोक्तावादी मानसिकता कार्य करती हुई नजर आती है जिसके कारण व्यक्तिगत लाभ तो शायद व्यक्ति तक पहुंचता है लेकिन इसका प्रभाव है अप्रत्यक्ष रूप से छात्रों के ऊपर दिखाई देता है। जिससे समाज में असमानता का दायरा निरंतर

[17] नाटक 'एक और द्रोणाचार्य'- शंकर शेष ,पृष्ठ स.6 ;प्रकाशन परमेश्वरी, दिल्ली-92.

बढ़ता जा रहा है। लीला का अरविन्द से ये कहना। तुम्हें यह नौकरी किसके कारण मिली! यह सोच उपभोक्तावादी सोच का ही परिणाम है। उपभोक्तावादी मानसिकता के कारण नैतिकता के सवाल ही समाज में बदलते जा रहे है। लीला का अरविन्द से यह कहना की सिन्हा समझेंगे की अच्छे अहसान फरामोश लोग है। व्यक्तिवादी विचारों ने लीला के अनैतिक कार्यों को नैतिक कार्य के रूप में स्थानांतरित कर दिया है जिसके कारण समाज में उपभोक्तावादी मानसिकता के लोग सही से नैतिक और अनैतिक कार्यों में फर्क नहीं कर पाते। जिसका एक ही सबसे बड़ा कारण उभर कर सामने आता है समाज में व्यक्तिवाद का प्रसार होना। प्रस्तुत नाटक के इस संवाद से व्यक्तिवाद किस सीमा तक समाज में फैलता जा रहा है इस यथार्थ को समझा जा सकता है।

जब अरविन्द राजकुमार को कक्षा में नकल करते हुए पकड़ लेता है और उसके खिलाफ कानूनी कार्यवाई की बात करता है जिसके कारण एक हंगामा खड़ा हो जाता है। अरविन्द के घर में भी इस बात को लेकर बहस हो जाती है कि तुम उस मसले में मत पड़ो। तो अरविन्द नैतिकता के आधार पर फैसला लेने की कोशिश करता है। लेकिन उसकी एक नहीं सुनी जाती और यदू (पात्र) जो उसी कॉलेज में एक लेक्चरर है वह अरविन्द से कहता है

"अरविन्द: कुछ मेरी भी सुनोगे?

यदु: कान पक गए तुम्हारी बातें सुनते सुनते! कहाँ तो सोच था की साल-दो साल में तुम प्रिंसिपल बनोगे और मैं वाइस प्रिंसिपल !और कहाँ तुमने यह हंगामा खड़ा कर दिया। (विराम) पहले अपनी चमड़ी बचाव और तब लगाव हाथ दूसरों को"[18]।

इस प्रसंग के माध्यम से शंकर शेष यह बताना चाहते हैं कि आज नैतिकता की आवाज को लोग कैसे दबाते है। आज किस प्रकार व्यक्तिगत लाभ नैतिकता के प्रश्न से बड़ा होता जा

[18] नाटक 'एक और द्रोणाचार्य'- शंकर शेष ,पृष्ठ स.7 ;प्रकाशन परमेश्वरी, दिल्ली

रहा है। यदि फिर भी कोई अरविन्द की तरह नैतिकता के सवाल को समझ कर आगे कुछ करना चाहता है तो अनेकों दबाव से उसकी आवाज को समाज और परिवार के लोग किस तरह दबाते हैं उसे दिखाया गया है। और जब अरविन्द यह पूछता है यदु से तुम मेरी जगह होते तो क्या करते ? तो यदु कहता है –

> यदु- मैं? और मैं तो और कागज लाकर दे देता। कहता करो बेटा नकल, इत्मीनान से करो। अपने बाप का क्या जाता है।

इस प्रकार प्रस्तुत प्रसंग के माध्यम से लेखक ने शैक्षणिक संस्थानों में बढ़ते व्यक्तिवादी प्रवृत्ति की वास्तविकता को दर्शाया है। यदि यदु जैसे शिक्षकों की शैक्षणिक संस्थानों में संख्या बढ़ती जा रही तो यह समाज के विकास में नहीं देश के विकास में भी बाधक बन कर सामने आ सकती है। आज भी बहुत यदु जैसे शिक्षक शैक्षणिक संस्थानों में कार्य करते हैं और अपने व्यक्तिगत लाभ के लिए अनेकों छात्रों के जीवन के साथ खेलने का कार्य कर रहे हैं। इस प्रसंग के द्वारा लेखक इस यथार्थबोध को समाज के सामने लाने की कोशिश कर रहे हैं , व्यक्तिवाद के द्वारा शैक्षणिक संस्थाओं में विसंगतियां उभर रहीं हैं उनसे बचा जा सके और यदु जैसे शिक्षकों को संस्थानों में कम किया जाए। जिसका खामियाजा हम और समाज व शैक्षणिक संस्थाओं को उठाना पड़ रहा है। समय रहते यदि इस व्यक्तिवादी मानसिकता से नहीं लड़ा गया तो यह हमारे शैक्षिणक संस्थानों को दीमक की तरह चाट जाएगा।

यह व्यक्तिवादी मानसिकता छोटे पदों पर कार्यरत अधिकारियों में ही पाई जाती है ऐसा नहीं है यह उपभोक्तावादी मानसिकता शीर्ष पदों पर आसीन लोगों में भी समान व अधिक प्रबलता के रूप में देखी जा सकता है। इस बात को लेखक ने लीला और प्रिंसिपल के संवाद के माध्यम से प्रस्तुत किया है जब लीला के पति अरविन्द जो कालेज में लेक्चर है वह राजकुमार के नकल के केस में सजा दिलवाना चाहते है जिसके कारण प्रिंसिपल की नौकरी

खतरे में आ जाती है और प्रिंसिपल अपने पद को सुरक्षित करने की भावना से लीला से कहता है।

> “लीला: मेरा भी कहना कहाँ मानते हैं?
>
> प्रिंसिपल: तो तुम स्त्री किस बात की हो ? अरे, नकल वगैरह पकड़ना जूनियर लेक्चरर का काम है, सीनियर लोगों को क्या शोभा देता है ? खैर, हो गई गलती। अब सुधारनी भी तो होगी”[19]

लेखक यहाँ उस सच्चाई को दिखाने की कोशिश करते हैं जब शीर्ष पर बैठे प्रिंसिपल जैसे लोग जो अपने पद को बचाने के लिए गलत कार्य का साथ देने में बिलकुल भी नहीं हिचकिचाते है। तब उस व्यवस्था में किस प्रकार शैक्षणिक संस्थानों को बचाया जा सकता है ? आज अनेकों पदों पर प्रिंसिपल जैसे लोग जो उपभोक्तावादी मानसिकता के है ऐसे में उन शैक्षणिक संस्थानों का क्या भविष्य है ? उन संस्थानों में पढ़ रहे पाठकों का कैसे उज्ज्वल भविष्य हो सकता है जो अपने सपनों को सँजोकर पढ़ रहे हैं इस यथार्थबोध को लेखक इस प्रसंग से उजागर करना चाहता है।

3.2 राजनैतिक यथार्थबोध

राजनीति दो शब्दों का समूह है राज+नीति (राज मतलब ‘शासन’ और ‘नीति मतलब उचित समय में उचित स्थान पर उचित कार्य करने की कला’) अर्थात नीति विशंकर शेष के द्वारा शासन करना या विशंकर शेष उद्देश्य को प्राप्त करना राजनीति कहलाती है। दूसरे शब्दों में कहें तो जनता के सामाजिक एवं आर्थिक स्तर (सार्वजनिक जीवन स्तर) को ऊंचा करना राजनीति है। लेकिन वर्तमान राजनीति में यह गुण बहुत कम नज़र आने लगा है। जनता के

[19] नाटक ’एक और द्रोणाचार्य’- शंकर शेष , पृष्ठ स.11 ;प्रकाशन परमेश्वरी, दिल्ली-92,

सामाजिक एवं आर्थिक जीवन को बेहतर करने के बजाए नेतागण अपने आर्थिक विकास में ही ज्यादा ध्यान केंद्रित करने लगे हैं। जिसके कारण देश के विकास पर इसका सीधा असर देखा जा सकता है। मानव सभ्यता और संस्कृति के विकास को राजनीति का विकास माना जा सकता है। जैसे-जैसे मानव सभ्यता का उत्थान होता गया वैसे-वैसे राजनैतिक मान्यताओं में भी परिवर्तन हुआ है। अतः राजनीति मानव के विकास रूप में सामने आयी। राजनीति एक व्यवस्था है, इस व्यवस्था को अनेक रूपों में परिभाषित किया जा सकता है इस संदर्भ में मृदुला गर्ग लिखती हैं कि "व्यवस्था से हमारा तात्पर्य सत्तारूढ़ और संस्थागत तंत्र से है जो राजतन्त्र, अर्थतन्त्र, सामाजिक, सांस्कृतिक विधान के अनेक अवयव अपने भीतर समेटे रहता है। इन अवयवों में राजनैतिक दल, नौकरशाही, शिक्षा, संस्थान, व्यापार व विज्ञापन तंत्र, साहित्यिक व कलागत परंपरा सब आ जाते हैं"[20]। जिन अवयवों का जिक्र मृदुला गर्ग करती हैं। वे सभी राजनैतिक व्यवस्था के अंतर्गत आते हैं। इन सभी अवयवों की स्थिति स्वतंत्रता प्राप्ति से पहले बहुत खराब थी। जिनके कारण लोगों में जन-आक्रोश भी दिखाई देता है। नेताओं ने इस आक्रोश का प्रयोग पूर्ण स्वतंत्रता के लिए किया था। जिसके कारण हमारे देश में क्रांतिकारी परिवर्तन हुए। स्वतंत्रता के लिए अनेक आंदोलन हुए और अतः स्वतंत्रता प्राप्त हुई। स्वतंत्रता मिलते ही भारतीय जन-मानस में नयी आशा-आकांक्षाओं का जन्म हुआ। 26 जनवरी 1950 में स्वतंत्र भारत में संविधान लागू हुआ। देश के आर्थिक, सामाजिक, संस्थानिक विकास को ध्यान में रखते हुए अनेक विकास योजनाओं का निर्माण हुआ। देश को पिछड़ेपन से मुक्त कर सुख-सुविधा उपलब्ध करवाने के आश्वासन दिए गए। नयी-नयी आजादी मिलने के कारण लोगों में उत्साह था। इसीलिए जनता को अपने द्वारा चुनी गई नई सरकार से बहुत उम्मीदें थीं। परिणामतः प्रथम आम चुनाव 1952 में हुआ लेकिन कुछ समय में जनता का चुनी हुई सरकार के प्रति मोहभंग हुआ। उनके मन में स्वाधीनता से उत्पन्न हुई

[20] कथाक्रम, संपा-शैलेन्द्र सागर, अक्टूबर-दिसंबर – 2005, पृष्ठ-74

आशाओं, आकांक्षाओं पर पानी फिर गया और देश में बेकारी, भुखमरी, भाई भतीजावाद, जातिवाद, सांप्रदायिकता, भाषावाद, प्रांतवाद आदि समस्याओं का जन्म हुआ। राजनीति में बड़े-बड़े वादे किए गए लेकिन उन्हें वास्तव में लागू नहीं किया जा सका। देश के विकास के उद्देश्य से बनायी गयी पंचवर्षीय योजनाएं भी असफल हुई। बढ़ती बेरोजगारी की वजह से अराजकता को बढ़ावा मिला। राजनेताओं की स्वार्थपरकता एवं अवसरवादिता के कारण भारतीय राजनीति में अनेक विकृतियाँ पनपी। राजनेताओं द्वारा दिनों दिन जनता के प्रति उनकी उपेक्षा बढ़ती गयी, जिसके कारण देश में अनैतिकता, भ्रष्टाचार, अवसरवाद एवं मूल्यहीनता जैसे नकारात्मक विचारों का तेजी से फैलाव हुआ। तिकड़मी एवं षडयंत्रकारी राजनीति के चलते सामाजिक जीवन भीतर से खोखला हो गया। राजनेता अब जनता के हितों की अपेक्षा अपना निजी हित साधने लगे। उनकी देश के प्रति कोई निष्ठा शंकर शेष नहीं रही। आज चुनाव तथा राजनीति ने देश के जन जीवन को भ्रष्ट बनाकर देश को लड़ाई तथा अराजकता का अखाड़ा बना दिया गया है। इस राजनीति के कारण देश में दलबंदी, आपसी वैमनस्य, झगड़े, हत्या, कपटनीति, द्वेष, ईर्ष्या की भावना, आगजनी, चोरी, झूठे केस, गुंडागिरी ,प्रतिशोध की भावना, रिश्तों में दरारें तथा तिकड़मी राजनीति जैसी प्रवृतियाँ पैदा हुई। आज हमारा देश गंदी राजनीति के कारण अनेक समस्याओं का सामना कर रहा है। इस चुनावी राजनीति के कारण देश में जातीय संघर्ष, सांप्रदायिकता, आंतक, खून-खराबा आदि समस्याओं का निर्माण हो रहा है। सत्ता प्राप्ति के लिए नैतिक मूल्यों को पैरों तले कुचला जा रहा है।

राजनीति की इस दिशाहीन स्थिति के कारण दिनोंदिन जनता की उपेक्षा निरंतर बढ़ रही है। इस दिशाहीन राजनीति तथा उससे निर्मित हुई समस्यों के संदर्भ डॉ०चंद्रकांत बादीवाडेकर लिखते हैं कि "राजनीति भ्रष्टाचार, सत्ता आकांक्षी नेताओं का भयावह दोगला चरित्र, धनाढ्य व्यक्तियों की धन लालसा भोग लालसा और मूल्यहीन क्रूरता, पुलिस वर्ग का

जन पीड़क स्वरूप, छात्रों और शिक्षा क्षेत्र में काम करने वाली मूल्य विषयक बाधिता, बढ़ती आत्म केंद्रित, सुखोपजीवी दौड़, राजनीति में बढ़ता अपराधिकरण, जाति और संप्रदाय को बढ़ावा देकर जनता को वोट बैंक बनाने की युक्तियों, नगर और गाँव के असंतुलित संबंध, पारिवारिक टूटन, सामान्य जन-जवीन की असहायता, शिक्षा तंत्र की सर्वोमुखी असफलता यह समस्त विद्रुप यथार्थ हिन्दी उपन्यास, नाटकों अन्य गद्य विधाओं में दिखाई पड़ता है"[21]

शंकर शेष ने राजनैतिक प्रभाव के कारण देश में आई विसंगतियों का चित्रण आपने नाटकों में बहुत प्रामाणिकता से किया है। राजनैतिक प्रभाव से देश में अनेक समस्याओं की शुरुआत हुई। इस विसंगति के कारण देश की अखंडता और एक जुटता खतरे में आ गई है। देश गुटों एवं पार्टियों में विभाजित हो गया। निष्कर्षता देश में वैमनस्य बढ़ने लगा हमेशा मिल-जुलकर रहने वाले देशवासी राजनैतिक पार्टियों तथा गुटों में विभाजित होकर रह गए हैं। जिसके कारण भाई-भाई का दुश्मन बन रहा है। देश में सत्ता हासिल करने के लिए दिन-दहाड़े हत्या करवाई जाती है। इस गंदी राजनीति के कारण नैतिक मूल्यों का ह्रास होता जा रहा है। और उसके परिणाम में वह अपनी राजनैतिक रोटी कैसे सेंकते है ? यह भी देखा जा सकता है। आज प्रत्येक आदमी-गुटों में विभाजित कैसे होता जा रहा है ? इसी यथार्थबोध देखा जा सकता है।

चुनावी राजनीति का शिक्षा के क्षेत्र में प्रभाव क्या है ? राजनीति शिक्षा के क्षेत्र को कैसे प्रभावित करती है? जिसके कारण शिक्षा क्षेत्र में अनेक विसंगतियां जन्म ले रही हैं। देश की पार्टी या गुटों के लोग शिक्षा क्षेत्र में कैसे हस्तक्षेप कर रहें हैं ? शंकर शेष के नाटकों में इसकी अभिव्यक्ति देखी जा सकती है।

[21] अक्षरा अंक – 50, अक्टूबर-दिसंबर 2000 , पृष्ठ -79

राजनैतिक तिकड़मबाजी

राजनीति में अपनी सत्ता एवं अस्तित्व बनाए रखने के लिए राजनेता अनेक प्रकार की तिकड़मबाजी चाले चलते हैं। इस तिकड़मबाजी से किसी भी प्रकार की राजनीति हो चाहे चुनावी या संस्थानों सभी जगह इस तरह के षड़यन्त्र का प्रयोग किया जाता है। इस तिकड़मबाजी की वास्तविकता को शंकर शेष ने अपने नाटकों में बहुत सजीव रूप से उजागर किया है। शैक्षणिक संस्था में तिकड़मबाजी की राजनीति को केंद्र में रखकर उन्होंने अपना नाटक 'एक और द्रोणाचार्य' में यथार्थ को प्रस्तुत किया है। किस प्रकार आज शैक्षिणक संस्थाओ को तिकड़मबाजी राजनीति अपने शिकंजे में जकड़ती जा रही है। सत्ता के लालच में किस प्रकार मूल्य हीनता को देखा जा सकता है।

'एक और द्रोणाचार्य' नाटक का पात्र *'चंदू'* कालेज का छात्र होता है। कालेज में परीक्षा का समय चल रहा होता है। जिसमें चंदू भी परीक्षा दे रहा होता है। और उसी कक्षा मेंप्रिंसिपल का लड़का *'राजकुमार'* छुरा सामने रखकर नकल करता है। और प्रोफेसर मिश्रा ड्यूटी पर उसी कमरे में होते हुए भी राजकुमार को कुछ नहीं बोलते तभी अचानक कहीं से एक कागज उड़कर चंदू के पास आ जाता है। उस कागज को वह प्रोफेसर मिश्रा को देने के लिए आवाज लगाने ही वाला होता है, लेकिन मिश्रा दौड़कर चंदू का हाथ पकड़ लेता है और चंदू के लाख मना करने पर भी कि मैंने नकल नहीं की उसे प्रिंसिपल के पास ले जाता है। जहाँ पर प्रिंसिपल के साथ प्रेसीडेंट बैठा होता है। वह चंदू को इस तरह देखता है, जैसे कोई शिकार जाल में फंस गया हो। चंदू कहता है की-

"चंदू वहाँ तो प्रिंसिपल के साथ ही कालेज का प्रेसीडेंट भी बैठा था उसने मेरी ओर इस तरह देखा जैसे शिकार हाथ लग गया हो (विराम) उसकी मुस्कराहट भयानक थी

सर”[22] अरविन्द चंदू से पूछते हैं कि वह तुम्हें झूठे केस मेंक्यों फ़साना चाहते थे ? चंदू कहता है -

“चंदू मेरे पिताजी और प्रेसीडेंट का राजनैतिक विरोधी है। आने वाले चुनाव में वे प्रेसीडेंट के खिलाफ लड़ रहे हैं। मैं उस विरोध की बलि बनाया गया हूँ सर”[23]।

प्रेसीडेंट इस घटना का प्रयोग अपनी तिकड़मबाजी राजनीति के लिए करता है। उसे चंदू के भविष्य से कुछ लेना देना नहीं है। उसे केवल अपने विरोधी चंदू के पिता की राजनैतिक छवि खराब करके अपनी राजनीति की रोटी सेकनी है। इसलिए प्रेसीडेंट चंदू को केंद्र में रखकर उससे राजनैतिक फायदा उठाता है। यह विकृति आज राजनीति की वास्तविकता है। स्वार्थ साधने वाली राजनीति की प्रवृति निरंतर बढ़ती जा रही है। प्रेसीडेंट का लड़का राजकुमार कालेज में पढ़ रही अनुराधा नाम की लड़की के साथ रेप करने की कोशिश करता है। अनुराधा के चिल्लाने की आवाज सुनकर अरविन्द जो कॉलेज के प्रिंसिपल होते हैं। वहाँ पहुंच कर अनुराधा को उन सब से बचाते हैं। अरविन्द ही इस घटना का एक मात्र गवाह होता है। अनुराधा को अरविन्द रिपोर्ट करने को कहता है। अनुराधा रिपोर्ट कर देती है। लेकिन यह बात प्रेसीडेंट को सही नहीं लगती है। वह अरविन्द (प्रिंसिपल) पर दबाव बनाते हैं कि तुम अनुराधा से रिपोर्ट वापसी लेने का दबाव बनाओ। प्रसिडेंट ये सब अपनी तिगड़मबाजी राजनीति के लिए करता है। क्योंकि उसे मंत्रिमंडल में शामिल करने की बत चल रही होती है। और यदि अनुराधा का केस चलेगा तो उसकी राजनैतिक छवि खराब होगी। इसलिए प्रसिडेंट अरविन्द से कहता है कि -

“प्रेसीडेंट: दूसरा कोई समय होता तो आपकी बात मान लेता पर इस समय नहीं।

अरविंद: क्यों।

[22] एक और द्रोणाचार्य – शंकर शेष , पृष्ठ संख्या. 16

[23] एक और द्रोणाचार्य – शंकर शेष , पृष्ठ संख्या. 16

प्रसिडेंट: अब आपसे क्या छिपाऊँ। "मुझे मंत्रिमंडल मेंलेने की बात चल रही है। मेरी इमेज नहीं बिगड़नी चाहिए"[24]।

इस प्रकार प्रेसीडेंट अपनी तिकड़मबाजी राजनीति साधने के लिए अनुराधा की आवाज को दबाने की पूर्ण कोशिश करता है और अंत में जीत प्रेसीडेंट की होती है। तिकड़मबाज़ी राजनीति का परिणाम अनुराधा को अपनी जान देकर चुकाना पड़ता है। इस तरह अनुराधा तिकड़मबाज़ी राजनीति की शिकार हो जाती है। यह आज की वास्तविकता है। शैक्षिणक संस्थाओं मेंकितने छात्र-छात्राएं तिकड़मबाज़ी राजनीति का शिकार होते हुए देखे जा सकते हैं। अगर कोई व्यक्ति किसी नेता के रास्ते का कांटा बनता है या उसके स्वार्थ के आड़े आता है तो उसे किसी-न-किसी तिकड़म के द्वारा हटाया जाता है। जैसे: चंदू और अनुराधा की तरह या फिर चाहें अन्य कोई भी हो। शंकर शेष ने अपने नाटकों में तिकड़मी राजनीति तथा उसके दुष्परिणामों से परिचित कराया है।

राजनीति का अपराधिकरण

राजनीति का अपराधिकरण दिनोंदिन बढ़ता ही जा रहा है। अपराधिकरण आज मानो हमारी राजनीति का सूत्र ही बन गया है, जो अधिक अपराध करेगा वह राजनैतिक क्षेत्र में अपना स्थान पक्का करेगा। क्योंकि नेताओं की अपराधिक छवि ही उनके राजनैतिक भविष्य में हितकारी सिद्ध होती है। आज भी हमारे देश की राजनीति में अनेक ऐसे नेता सक्रिय हैं जो अनेक संगीन अपराधों मेंलिप्त हैं। लेकिन सत्ता में शीर्ष पदों पर आसीन हैं वही आज जनता के नेतृत्व एवं प्रतिनिधित्व का दावा करते हैं इसी रवैये के कारण आज के राजनैतिक दल अपराधियों से भरे हुए हैं।

[24] एक और द्रोणाचार्य – शंकर शेष , पृष्ठ संख्या. 44

“एडीआर रिपोर्ट के अनुसार 17वीं लोकसभा के लिए संसद पहुँचने वाले 542 सांसदों मेंसे 233 यानि 43 फीसदी सांसद दागी छवि के हैं। हलफनामों के हिसाब से संसादों के खिलाफ 159 यानि 29% सांसदों के खिलाफ हत्या, बलात्कार और अपहरण जैसे गंभीर मामले लंबित है”[25] वर्तमान की एडीआर की रिपोर्ट आज की राजनीति के अपराधिकरण के यथार्थ को भली-भांति स्पष्ट करती है। इस प्रकार राजनीति के अपराधिकरण के अनेक उदाहरण हैं। शंकर शेष ने भी अपने नाटकों में राजनीति के अपराधिकरण की बढ़ती प्रकृति के यथार्थ रूप को उजागर किया है। शंकर शेष ने *‘एक और द्रोणाचार्य’ में* प्रसिडेंट और उसके बेटे राजकुमार के माध्यम से दिखाया है वह सत्ता पाने के लिए किसी भी हद तक जाते हैं। राजकुमार, अनुराधा जो एक ही कालेज के छात्र होते हैं राजकुमार अपनी शारीरिक हवस मिटाने के लिए अनुराधा के साथ रेप करने की कोशिश करता है। जब यह मामला तूल पकड़ता है, तो प्रेसीडेंट अपनी राजनैतिक छवि को साफ रखने के लिए गुंडा-गर्दी, मारपीट, धमकियों का इस्तेमाल करता है। अनुराधा से जब अरविन्द कहता है कि मैं तुम्हारे साथ हूँ तो अनुराधा कहती है कि -

“अनुराधा: जानते है मेरे पिता को धमकाया जा रहा है।

अरविन्द : कौन धमका रहा है?

अनुराधा : राजकुमार और उसके साथी

अरविन्द : क्या धमकी दी है ?

अनुराधा : मेरे पीछे गुंडे लगाने की राजकुमार जो कुछ नहीं कर पाया, उसे पूरा करवाने की। मेरे पिता को जन से मरने की”[26]।

[25] इंटरनेट से आभार

[26] एक और द्रोणाचार्य – शंकर शेष , पृष्ठ संख्या. 47

शंकर शेष ने अपनी कृति में इस संवाद के माध्यम से वर्तमान राजनीति में पढ़ते अपराधिकरण के यथार्थ को अभिव्यक्त किया है। यह आज की राजनीति की वास्तविकता है।

जब अरविन्द अनुराधा का साथ देने के लिए तैयार होता है तो प्रेसीडेंट अरविन्द को कॉलेज के झूठे गबन केस में जेल भिजवाने की धमकी देता है। यदि तुम जेल नहीं जाना चाहते हो तो अनुराधा को रोको और रिपोर्ट वापसी लेने को कहो। यदि अनुराधा ऐसा नहीं करती तो उससे मेरी राजनैतिक छवि पर असर आ सकता है तब अरविन्द प्रेसीडेंट से कहता है कि -

"अरविन्द: तो राजकुमार को रेस्टीकेट कर दीजिए। आपकी इमेज और उभरकर सामने आएगी

प्रेसीडेंट : परमार्थ की राजनीति के दिन याद गए, मिस्टर और अरविन्द

अरविन्द : तो आप चाहते क्या है?

प्रेसीडेंट : लड़के को बेदाग भी बचाना है। मंत्री भी बनाना है मुझे (विराम) आप नहीं जानते, अपराध की सार्वजनिक तौर पर स्वीकृति राजनीति मेंआत्महत्या कहलाती है"[27]।

शंकर शेष ने प्रसिडेंट और अरविन्द के संवाद के माध्यम से आज के राजनेताओं की अपराधी मानसिकता के मार्मिक चित्र को चित्रांकित किया है। आज के नेता अपनी राजनैतिक छवि को बनाये रखने के लिए अपराध को परमार्थ का रास्ता बनाए हुए हैं। प्रेसीडेंट के द्वारा ये कहना की अपराध की सार्वजनिक तौर पर स्वीकृति राजनीति के लिए आत्महत्या कहलाती है। इससे यह स्पष्ट होता है कि आज के नेताओं पर जितने भी आपराधिक मामले हैं उनका परिणाम बाद मेंनेताओं के पक्ष मेंही अधिक देखने को मिलता है क्योंकि प्रेसीडेंट के ही तरह वह भी अपराध करते हैं और करवाते हैं। केस के सभी सबूतों, गवाहों को मिटाकर या मरवाकर उस केस को अनुराधा के केस की तरह खत्म करने की कोशिश करते नजर आते

[27] एक और द्रोणाचार्य – शंकर शेष , पृष्ठ संख्या. 45

हैं। आज भी प्रेसीडेंट जैसे अनेक अपराधी प्रवृति के लोग राजनीति में सक्रिय हैं। उन पर चोरी, हत्या, बलात्कार, भ्रष्टाचार जैसे गंभीर आरोप हैं। जिनके केस अदालतों में लंबित हैं। ऐसा लगने लगा है कि ईमानदार एवं स्वच्छ चरित्र वालों के लिए राजनीति मेंकोई स्थान ही नहीं रहा हो। एडीआर की रिपोर्ट एवम प्रेसीडेंट जैसे लोग हमें यह सोचने पर विवश कर रहें हैं। राजनीति में अपराधीकरण निरंतर बढ़ता जा रहा है यदि इसे समय पर नहीं रोका गया तो हम तीसरी दुनिया के देशों की गिनती से भी बाहर हो जाएंगे। देश में विकास की जगह अराजकता का ही माहौल हर तरफ विराजमान होगा।

राजनीति में स्वार्थपरकता एवं अवसरवाद

राजनीति का मूल आधार स्वार्थपरक व अवसरवादी होता जा रहा है। देश सेवा, जनता की सेवा सब मानों जुमले दिखाई देते हैं। आज राजनीति राजनेताओं और अवसवादी लोगों के लिए स्वार्थ साधने व स्वयं सपन्न होने का माध्यम बन गई है। राजनीति में सत्ता को हासिल करने के लिए नेताओं व अवसरवादी लोगों में जो होड़ लगी है। उसके पीछे एक मात्र उदेश्य स्वार्थ साधना है। अवसरवादिता स्वार्थ पर टिकी धुरी का नाम है। जो अपने स्वार्थ के लिए अन्याय के साथ खड़े होते हैं। राजनेता अपने स्वार्थ को साधने के लिए अपनी सत्ता बचा के लिए व्यवस्था के अंदर अवसरवादिता का पौधा रोपण करते हैं। प्रशासन शिक्षण संस्थाओं आदि में उच्चतर स्तर पर बैठे अधिकारियों को यह पौधा तोफों के रूप में भेट करते हैं। और अपनी राजनीति को सतत रखता है।

शंकर शेष ने नेताओं की इन्ही स्वार्थपरक प्रकृति को अपने समग्र नाटकों मेंउजागर किया है। अपना स्वार्थ पूरा करने के लिए किस तरह वह प्रशासनिक शिक्षण संस्थाओं में पदों पर आरक्षित लोगों को अवसरवादिता का यह पौधा भेट करते हैं। इसे चिन्हित किया है।

एक और द्रोणाचार्य में अरविन्द, राजकुमार, प्रेसीडेंट से चित्रांकित किया है। अरविन्द प्रेसिडेंसी के लड़के (राजकुमार को) नकल करते हुए पकड़ लेता है और उसके खिलाफ रिपोर्ट दाखिल करता है। दूसरी तरफ चंदू (नाम) पात्र जिससे पहले नकल के झूठे केस में फसाकर कालेज से निकाला जा चुका है वह इस घटना का विरोध करता है। और अरविन्द पर इस बात का प्रेसर बनवाता है कि वह रिपोर्ट वापस नहीं लेंगे लेकिन राजकुमार का पिता प्रेसीडेंट होता है। और संस्था की सत्ता पर उसका वर्चस्व होता है। वह अपनी छवि को बचाने के लिए तिकड़मबाजी राजनीति का इस्तेमाल करता है और इसका शिकार वह अरविन्द को बनाता है। जिसके लिए वह अरविन्द के घर आकर लीला के समाने अरविन्द को प्रिंसिपल बनाने का अवसर देता है और कहता है कि :-

"प्रेसीडेंट: अब कैसे बताऊँ, घर से जाने क्या सोचकर चला था। लेकिन आपने ऐसा रुख अपना लिया   की बात धरी की धरी रह गई। (विराम) यूं आर द ओन्ली प्रोफेसर हुम आय रिस्पेकट सो मच (विराम) आपका यह प्रिंसपल है न, सोचा था, इसकी छुट्टी कर दूं कालेज का नाश मारकर रख दिया उसकी जगह आपको।

अरविन्द : आश्चर्य से मुझे ?

प्रेसीडेंट : कह न, यूं आर द ऑनली प्रोफेसर कुछ मायनों मेंआपसे विरोध हो सकता है, पर इसका मतलब यह नहीं कि आपकी योग्यता के बारे मेंमैंने कभी शक किया"[28]।

आज के नेता भी अपनी राजनैतिक छवि को बचाने के लिए अपने स्वार्थ को पूरा करने के लिए अपना तिकड़मबाजी राजनीति के द्वारा अवसरवादिता का पौधा भेटकर अपने स्वार्थ

[28] एक और द्रोणाचार्य – शंकर शेष , पृष्ठ संख्या. 22

का उल्लू सीधा करते हैं। जैसे प्रेसीडेंट ने राजकुमार के मामलों को रफ़ा-दफा करने के लिए प्रिंसिपल की गद्दी को भेंट की है। यह आज की वास्तविकता है।

लेकिन अरविन्द चंदू का साथ देना चाहता था क्योंकि वह नैतिकता थी। लेकिन अरविन्द को पारिवारिक दबाव के कारण और अवसरवाद के सामने अपने घुटने टेकने पड़ते हैं। इसे शंकर शेष लीला और अरविन्द के माध्यम मेंअभिव्यक्त करते हैं।

“लीला: उस बदमीज़ लड़के का साथ देकर भी क्या मिलेगा? प्रेसीडेंट से दुश्मनी ठन आएगी। तुम्हारे सहयोगी भी कहाँ साथ दे रहे हैं ? लड़ोगे किसके भरोसे ?

अरविन्द : लेकिन चंदू को दगा देते का मतलब समझती हो? नकल का विरोध करने वाले सैकड़ों विद्यार्थी मेरे खून के प्यासे हो जाएंगे। मुझ पर थूकेंगे।

लीला : प्रेसीडेंट उनसे निपट लेगा, तुम्हें सुरक्षा देगा प्रिंसिपल बना देगा और लकड़े तुम्हें केवल सड़कों पर खड़ा कर तमाशा देखेंगे। उनका साथ देने से फायदा”[29]?

स्वार्थ सिद्ध राजनीति और अवसरवादिता मानसिकता आज के लोगों को अरविंद और लीला की तरह अन्याय के रास्ते पर चलने पर अग्रसर करती है। लेकिन अवसरवादी लोगों को अन्याय नहीं दिखता सिर्फ अपना स्वार्थ और लोभ नजर आता है। जैसे लीला को अवसरवादी लोगों को अन्याय से कोई लेना देना नहीं है (लीला पात्र) की तरह उन्हे बस अपना फायदा नजर आता है। लीला और प्रेसीडेंट की बात को स्वीकार करना पड़ता है। अरविन्द को और यह सभी अवसरवादिता के कारण होता है। अरविन्द रिपोर्ट वापिस लेता है प्रेसीडेंट का साथ देकर चंदू और उनके साथियों पर पुलिस के डंडे चलवा देता है। इस संवाद से स्पष्ट लेखक ने स्पष्ट किया है “अरविन्द : इस लड़कों पर हमने पुलिस के डंडे बरसाए थे उनके

[29] एक और द्रोणाचार्य – शंकर शेष , पृष्ठ संख्या. 22

अगुआ लोगों को कॉलेज से निकलवाया मैंने सबके सामने झूठ बोला था"[30]। अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए अवसरवादिता के कारण आज के लोग भी अरविन्द की तरह झुठ बोलते हैं और अपने व्यक्तिगत लाभ के लिए अन्याय का साथ देते हैं। इस यथार्थ को शंकर शेष स्पष्ट करते हैं।

राजनैतिक और जनविरोध

जिस राजनीति की नींव समाज की सेवा और उनके उत्थान के लिए रखी गई थी। आज वह अपना समाजसेवी का स्वरूप खोती जा रही है। आमजन अपनी मूलभूत सुविधा के लिए मांग करता है तो उसे पूरा करने के लिए चुनाव मेंजुमला बनाकर पेश किया जाता है और जैसे ही सत्ता हाथ आती है तो वह जुमला गायब हो जाता है। और जन फिर उसके लिए विरोध करें तो उसे अवसरवादी राजनीति के जहाज के नीचे रौंदने की कोशिश की जाती है। आजादी का स्वप्न पूरा हुआ लेकिन स्थिति कुछ ही बेहतर हो पाई। आज भी गणतंत्र में जन अपने अधिकारों को पाने के लिए जद्दोजहद करता है। लेकिन उसे अपने अधिकार मिले इसकी कोई गारंटी नहीं है। क्योंकि राजनीति का स्वरूप आज जनविरोधी हो चला है। आमजन की मांग की जगह जुमला दिया जाता है। और जन इससे शांत नहीं होता तो उसे और उसके विरोध को सत्ता अपनी शक्ति से कुचलने का प्रयास करती है। आजाद भारत में संविधान सभी जन को समानता, स्वतन्त्रता, बंधुता और अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता देने का अधिकार देता है। लेकिन इन अधिकारों को राजनेता अपनी सत्ता मेंचूर होकर अपनी छवि और स्वार्थता के कारण अपने पैरों तले कुचलते है।

इस जन विरोधी राजनीति के साक्ष्य हमेंशंकर शेष के नाटकों मेंउजागर होते हैं। उन्होंने अपनी कृति 'एक और द्रोणाचार्य' में नारी के अधिकारों को किस तरह छीना जाता है ? और

[30] एक और द्रोणाचार्य – शंकर शेष , पृष्ठ संख्या. 42

उसके विरोध को सत्ता का दुरुपयोग करके किस तरह दबाया जाता है ? इस पर ध्यान दिया। नाटक मेंअनुराधा नाम की एक पात्र जो कॉलेज की एक छात्रा होती है। अनुराधा पर राजकुमार नाम का लड़का अपने पिता के सत्ता में होने के कारण अनुराधा का रेप करने की कोशिश करता है। कॉलेज के प्रिंसपल इस घटना के साक्षी होते हैं। पहले तो अरविन्द अनुराधा का साथ देने का वादा करता है लेकिन जब अरविन्द के ऊपर प्रेसीडेंट अपने राजनीति के तिकड़म से उसे जेल भेजने के लिए गबन के केस मेंझूठ ही फ़साने के डर को दिखाकर अनुराधा का साथ देने को कहता है। यदि वह ऐसा करता है मैं तुम्हें जेल भिजवा दूंगा। लेकिन अनुराधा अरविन्द सर के वादे के अनुसार अपने परिवार वालों की भी नहीं सुनती और रिपोर्ट करवा देती है लेकिन अरविन्द (प्रिंसिपल) वह बातों को घुमाने लगता है लेकिन अनुराधा कहती है—

"सर, मैं आपसे अब साफ साफ ही पूछती हूँ आप कल ऐक्शन लेंगे या नहीं मेरे ओर से बोलोगे या नहीं?

अरविन्द : जरा सोचो तो! जोश अलग बात है। समझदारी से काम लो रस्टिगेट होने के बाद भी अरविन्द तुम्हें तंग कर सकता है। उसका क्या भरोसा ? क्षमा उसका मन बदल दे ? उसे सुधार दे ?

अनुराधा : आप बात को टाल क्यू रहें है ? साफ बताइए आप मेरा साथ देंगे या नहीं ?

अरविन्द : तुम्हारे पिता क्या ख्याल करते हुए शायद मैं तुम्हारा साथ न दे पाऊँ"[31]।

अवसरवादिता और तिकड़मबाज़ी की राजनीति के कारण अरविन्द को झुकना पड़ता है। और एक आधुनिक नारी जिसे आजाद भारत मेंजीने का मौका मिला है। लेकिन उसे स्वतन्त्रता से जीने का अधिकार नहीं मिल सका। अनुराधा जो अपनी पब्लिक ईमेज की चिंता

[31] एक और द्रोणाचार्य – शंकर शेष , पृष्ठ संख्या. 51

छोड़कर, अपने परिवार के मना करने, अपने अधिकार के लिए भी लड़ना चाहती थी। लेकिन उसके विरोध को कुछ अवसरवादी तिकड़मबाज़ी, जनविरोधी, राजनीति के हत्थे चढ़कर उसे जनविरोधी राजनितीनुमा ट्रक के सामने कूदकर अपनी जान देनी पड़ती है। साहित्य में कल्पना जरूर होती है। लेकिन उस कल्पना का आधार भी यथार्थ होता है। अनुराधा के विरोध की तरह आज भी सुशिक्षित नारियों को विरोध के परिणाम मेंसिर्फ हत्या मिलती है। उदाहरण निर्भया कांड, प्रियंका रेड्डी कांड, हाथरस जैसी घटनाएं हमें 21वीं शताब्दी में भी देखने को मिलती है। आज नारी सशक्तिकरण के नाम पर जुमले बाजी के अलावा और कुछ नहीं मिलता है। आज की नारी को पुरुष प्रधानता, जनविरोधी राजनीति का शिकार होना पड़ता है। आज भी नारी समानता, स्वतंत्रता जैसे अधिकारों के लिए संघर्ष कर रही है। एक नारी का मरना अनेकों सपनों का मर जाना है। लेकिन राजनेताओं के लिए वह एक वोट के अलावा कुछ नहीं है। यह संवेदनहीन राजनीति का स्वरूप है। शंकर शेष ने अनुराधा (पात्र) के माध्यम से नारी की आवाज, उसके विरोध को कैसे जनविरोधी राजनीति का शिकार होना पड़ता है। उसे बहुत ही तथ्यपरक प्रमाणिकता से व्यक्त किया है।

अरविन्द अनुराधा की हत्या का कसूरवार अपने आपको मानकर इस्तीफ़ा देने की बात करता है। लेकिन विमलेंदु से मना करता है। कहता है-

“विमलेंदु: - स्त्री का अपमान कोई नई बात नहीं वह तो होता रहा है। क्या तुम्हारा द्रोणाचार्य कौरवों का दस्ता छोडकर चल गया? क्या उसने तलवार उठाई”[32]।

मिथकों के माध्यम से भी शंकर शेष व्यक्त करते हैं की अवसरवादिता किस प्रकार गुलाम बना लेती है। ठीक द्रोणाचार्य की तरह भी चाहे किसी के भी विरोध को कुचला जा रहा है।

[32] एक और द्रोणाचार्य – शंकर शेष , पृष्ठ संख्या. 55

यदि एक सैद्धांतिक पुरुष या शिक्षक न्याय का साथ देना चाहता है। अपने सिद्धांतों से समझौता नहीं करता और सत्ता का विरोधी हो जाता है।अपने अधिकारों की लड़ाई लड़ना चाहता है। इसका खामियाजा उसे अपनी जान से चुकाना पड़ सकता है। इस बात को शंकर मृत मात्र विमलेंदु के माध्यम से व्यक्त करते हैं। किस प्रकार उसका विरोध जनविरोधी राजनीति के सामने हार जाता है ? और उसे अपनी जान गवानी पड़ती है। लोग उसके विरोध को बलिदान कहकर उसकी लड़ाई को समाप्त कर देते हैं। अरविन्द कहता है कि -

"अरविन्द: हाँ, बलिदान करते समय तुम क्या सोच रहे थे?

विमलेंदु : बेवकूफ, बलिदान शब्द वापस लो मैं तुम्हारे क्लास मेंबैठा फर्स्ट ईयर का लौंडा नहीं हूँ। जो वजनी शब्दों के माय दर्पण मेंअपना चेहरा आंकने मेंशब्दों से पड़े चहरे से परे हूँ"[33]।

वर्तमान की यही स्थिति है। राजनीति विरोध को दबाने के लिए किसी भी हद तक जा सकती है। लेकिन दूसरी तरफ सहयोग वर्ग भी उसके विरोध से लड़ता नहीं है इसका भी कारण अवसरवादिता ही है। अवसरवादी मानसिकता उसके दिमाग को जकड़ लेती है। और उसके पैरों में बेड़िया डाल देती है और अवसरवादी मानसिकता के लोग लड़ाई को उसके विरोध को बढ़ाने में अपनी भूमिका देने की जगह उसके विरोध मेंउसकी जान देने के परिणाम मेंउसे बलिदान देकर उसके विरोध की गति पर ताला लगाया जाता है। यह विमलेंदु के संवाद के व्यक्तव्य का अर्थ है। इसलिए यह अपने मित्र अरविन्द को बलिदान शब्द प्रयोग करने से मना करता है।

शंकर शेष ने अपने इन संवादों के माध्यम से अवसरवादी मानसिकता किस प्रकार जनविरोधी राजनीति का सहयोगी पक्षधर बनकर कार्य करती है उसके यथार्थ बोध को स्पष्ट

---

[33] एक और द्रोणाचार्य – शंकर शेष , पृष्ठ संख्या. 25

करने का प्रयास किया है। वह भी बड़ी वास्तविकता की चित्रण के साथ और बताने की कोशिश की है कि आज भी इस जनविरोधी राजनीति के शिकार पता नहीं कितनी अनुराधा और कितने विमलेंदु हो रहें है।

शंकर शेष ने अपने नाटक 'एक और द्रोणाचार्य' के संवादों के माध्यम से वर्तमान के राजनैतिक यथार्थ बोध को अभिव्यक्त किया है। सभी संवादों के माध्यम से राजनैतिक यथार्थ का अवलोकन करने के उपरांत जो तथ्य निष्कर्ष के रूप मेंउजागर होते है वह है कि शंकर शेष ने भारतीय समाज की राजनीति के प्रत्येक पहलुओं को उजागर किया है। विकृत होती राजनीति तथा उसके समाज पर होने वाले प्रभाव का भी विस्तार से विवेचन किया है। उन्होंने सत्ता की राजनीति से लेकर शैक्षणिक सतह की राजनीति के अनेक प्रकार तथा रूपों को दिखाकर उसके प्रभाव को भी उजागर किया है। किस प्रकार शैक्षणिक संस्थानों मेंस्वार्थपरक या अवसरवाद की राजनीति की प्रकृति लगातार बढ़ती ही जा रही है। किस प्रकार जनविरोधी राजनीति समाज के निर्दोषों की जान ले लेती है। जिनका कसूर मात्र अपने अधिकारों की लड़ाई होती है। आज किस प्रकार भारतीय समाज की राजनीति स्वार्थपकता, अवसरवादिता व अपराधीकरण और जनविरोधों को अपने पैरों तले कुचलना अन्याय नहीं बल्कि न्याय बनता जा रहा है। इस मानसिकता की राजनीति का यथार्थ चित्रण वह करते हैं। और वास्तविक चित्रण भारतीय राजनीति मेंआई इन सभी विकृतियों को यथार्थपूर्ण ढंग से उजागर करते है।

3.3 आर्थिक यथार्थबोध

भारत को कृषि प्रधान देश कहा जाता था लेकिन आज भारत की अर्थ व्यवस्था विश्व की तीसरी सबसे बड़ी अर्थ व्यवस्था बन गयी है लेकिन यह भी एक कठोर सत्य है कि आज भी ग्रामीण समाज का अधिकतर हिस्सा कृषि पर आधारित दिखाई देता है। 1991 से भारत

में बहुत तेज आर्थिक प्रगति हुई है जब से उदारीकरण और आर्थिक सुधार की नीति लागू की गई है। भारत विश्व की एक आर्थिक महाशक्ति के रूप में उभर कर आया है। लेकिन इसके विपरीत आज भी किसान, मजदूर, शिक्षक आदि दिन रात मेहनत करने के बावजूद भी भूखा रहने पर विवश देखे जा सकते है और आर्थिक अभाव की मार को झेलते और निर्धनता की चक्की में निरंतर पिसते देखे जा रहें है। आर्थिक गैर बराबरी पर टिकी इस व्यवस्था ने दुनिया को दो भागों में बांटने का काम किया है। गरीबी और अमीरी जिसके कारण आर्थिक विषमता की खाई बढ़ती जा रही है। जिसके कारण भारतीय समाज में अनेकों विसंगतियों को जन्म दिया है। यह विसंगतियां हमें अनेक स्वरूपों में समाज में देखने को मिल रहीं हैं जैसे – गरीबी, मध्यवर्ग का अवसरवादी चरित्र, अवसर की सीमितता, अभाव ग्रस्त का जीवन, बेरोजगारी और भय और मोहभंग जैसी स्थितियों के रूप में दिखाई दे रही है। शंकर शेष ने अपनी अनुभूति के आधार पर इन सभी आर्थिक पक्ष के सभी ख्यालों को बहुत संजीदगी के साथ नाटक में अपनी अभिव्यक्ति किया है और मध्यवर्गीय जीवन के उन पक्षों का चित्रण किया है जो यथार्थ के आधार पर आधारित है। और एक मध्यवर्गीय परिवार के जीवन की आर्थिक समस्याओं के बहुत ही मार्मिक चित्रण किया है। उपरोक्त सभी आयाम मध्यवर्गीय समाज में जीवन की आर्थिक स्थिति के दस्तावेज है।

गरीबी, अभावग्रस्त और जीवन

गरीबी जीवन का सबसे बड़ा अभिशाप होती है। जिसके कारण मनुष्य को जीवन में अनेक संकटों एवं कष्टों का सामना करना पड़ता है। गरीबी और अभावग्रस्त होने के कारण लोगों का समाज में प्रत्येक स्तर पर शोषण होता है। गरीबी कोई एक समस्या नहीं है यह जीवन में अनेकों समस्याओं को जन्म देती है। अनेकों बाधाओं को जीवन में निमंत्रण भेजने का कार्य करती है, जिसके कारण मनुष्य को अपने अनेकों सपनों को दफन करना पड़ता है

और अभावग्रस्त होने के कारण अनेकों समझौते करने पड़ते हैं। समग्र जीवन की विवशता एवं जहालत में व्यतीत होती है। अमीर वर्ग अपने सुविधा के अनुसार गरीबों का इस्तेमाल करते हैं और लाभ उठाकर उनका निरंतर शोषण कर अपना स्वार्थ साध लेते है। देश में गरीबी कम होने के बजाए दिनों दिन बढ़ती जा रही है। आज देश के सामने एक गंभीर समस्या बन कर उभर रही है जो देश के विकास में बाधा के रूप में देखी जा सकती है। गरीबी के संदर्भ में *डॉ देवनारायण* शर्मा कहते हैं " गरीबी एक सर्वव्यापक समस्या है और समृद्ध देश भी इसके चपेट से नहीं बच सके। विश्व में गरीब देशों की संख्या इतनी है कि उन्हें तीसरी दुनिया के नाम से पुकारा जाता है"[34]।

शंकर शेष ने अपने नाटक में गरीबी व अभावग्रस्तता की भयावता को बहुत मार्मिक एवं सजीव रूप में उजागर किया है। इस नाटक के माध्यम से भारतीय समाज में व्याप्त गरीबी और अभावग्रस्तता और उसके दुष्परिणामों के यथार्थ का चित्रण किया है। उन्होंने इस नाटक को भारत के मध्यवर्गीय समाज व उनके अभावग्रस्ता को केंद्र में रखकर लिखा है। किस प्रकार अभावग्रस्तता के कारण अनेकों समस्याओं का सामना मध्यवर्गीय परिवारों को करना पड़ता है और उनकी ज्वलंत समस्याओं का मार्मिक चित्रण किया है। नाटक में पात्र अरविन्द जो भारतीय समाज में मध्यवर्गीय परिवार का प्रतिनिधित्व करता हुआ नजर आता है। अरविन्द एक सैद्धांतिक व्यक्तितव का धनी है और पेशे से कॉलेज में लेक्चरर होता है लेकिन वह कक्षा में राजकुमार जो प्रेसीडेंट का लड़का होता है उसे नकल करते हुए पकड़ लेता है जिसके कारण बड़ा बवाल खड़ा हो जाता है और अरविन्द पर अनेकों प्रकार से रिपोर्ट वापस लेने का दबाव बनाया जाता है, लेकिन शुरुआती दौर में अरविन्द एक सामाजिक शैक्षणिक नैतिकता के आधार पर अपने प्रोफेशनल एथिक्स के सवाल को बचाने की कोशिश करता है जबकी उसका साथी लेक्चरर यदु उससे इस मामले से निकलने की सलाह देते हुए यहाँ तक बोल देता

[34] साठोत्तरी हिन्दी उपन्यासों में सामाजिक समस्याएं - डॉ० देवनारायण, पृष्ठ स.284

है कि यदु लेकिन तुम हो न मिडिल क्लास के आदमी! हर छोटे सवाल को ग्लोरीफाइ करोगे । लेकिन अरविन्द तब भी इस बात को यह कहकर टाल देता है की यह दूसरों के लिए सवाल छोटा हो सकता है लेकिन मेरे लिए यह जीवन मरण का सवाल है । लेकिन यदु उसे उसकी अभावग्रस्त जीवन का भान करवाते हुए कहता है ।

> "यदु: (विराम) मिडल क्लास का नपुंसक जोश छोड़ो । जाओ, प्रेसीडेंट के हाथ पाव जोड़ों । केस को रफा दफा कराओ
>
> अरविन्द: यदु !
>
> यदु: और नहीं तो क्या ! माँ कैंसर से अस्पताल में पड़ी है । विधवा बहन हर पहली तारीख को तुम्हारी मनीऑर्डर का इंतेजार करती है । लड़के को मेडिकल कॉलेज भेजना है । इनकी तरफ देखो । छोड़ो ये है सिद्धांत- उदात की मूर्खता"[35] ।

यह सब दृश्य जब भी किसी सामाजिक अरविन्द के सामने आता है तो वह अंदर से टूट जाता है वह चाहकर भी अपने सिद्धांतों को बचाने में सफल नहीं हो पाता । एक मध्यवर्गीय व्यक्ति कितना भी सिद्धांतिक और नैतिकता रखता है, लेकिन वह अपनी अभावग्रस्तता के सामने हारता हुआ नजर आता है । उसकी वह लड़ाई जिसे वह जीवन मरण तक का सवाल बना लेता है उस दृढ़ लक्ष्य को अभावग्रस्त के कारण प्राप्त नहीं कर पाता है यह मात्र अरविन्द की दशा नहीं इस चित्रण के माध्यम से शंकर शेष ने शैक्षणिक संस्थानों में अभावग्रस्तता के कारण कितने अरविन्दो को हार को स्वीकार करना पड़ता है । सब कुछ जानते हुए भी अपने प्रोफेशन और एथिक्स को छोड़ना पड़ता है । अभावग्रस्त होने के कारण उसे अपने जमीर का साथ छोड़ना पड़ता है । आज भारतीय समाज में अभावग्रस्त एक बहुत बड़ी विसंगति है । यदि समय रहते सही कदम नहीं उठाए जाते तो अनेकों दुष्परिणामों को देखना पड़ सकता है जो

[35] नाटक 'एक और द्रोणाचार्य'-शंकर शेष ,पृष्ठ स.8 ;प्रकाशन परमेश्वरी,दिल्ली-92.

हमारे समाज के साथ-साथ देश के विकास में हानिकारक सिद्ध हो सकता है। जब ये मुद्दा अरविन्द के घर तक पहुंचता है तो उसकी पत्नी लीला भी अरविन्द का साथ न देकर उसे रिपोर्ट वापस लेने के लिए मजबूर करते हुए कहती है ,

"लीला: (भड़ककर) जानते हो, किस तरह घसीट रहीं हूँ तुम्हारी गृहस्थी की गाडी? एक-एक पैसे की खींच तान मची हुई है और तुमने यह नई मुसीबत खड़ी कर दी।

अरविन्द : मैं निपट लूँगा।

लीला : खाक निपट लोगे ! नौकरी छोड़कर बैठ जाओगे। क्या अकेले तुम्हीं दुनिया को सुधारने का ठेका ले रखा है ?

अरविन्द: मैंने कल दावा किया ?

लीला : सोचते क्यों नहीं अब क्या भड़कने की उमर रह गई है ? बीस साल हो गए शादी को। किसी बात का तो ठिकाना होता (विराम) भगवान के लिए कम से कम कुछ ऐसा तो मत करो की लगी लगाई रोटी भी छिन जाए"[36]।

प्रस्तुत प्रसंग में लीला के द्वारा यह कहना की तुमने ही दुनिया को सुधारने का ठेका ले रखा है यह सब लीला उस वक्त कह रही है जब उसे सच का पता है कि अरविन्द अपने स्थान पर सही है लेकिन अभावग्रसता के कारण व उसके भय की वजह से सच के साथ नहीं खड़ी होना चाहती है। शंकर शेष स्वयं एक अध्यापक थे उन्होंने स्वयं इस बात को महसूस ही नहीं बल्कि भोगा होगा। क्योंकि प्रसंग के प्रत्येक वाक्य में सच्ची अनुभूति पाठक वर्ग को हो रही है। आज भारतीय समाज में अनेकों महिलाएँ लीला की तरह सोचने पर मजबूर होती है। यह आज की वास्तविकता है जिसका चित्रण शंकर शेष ने किया है। अभावग्रस्त का प्रभाव केवल

[36] नाटक 'एक और द्रोणाचार्य'- शंकर शेष , पृष्ठ स.9 प्रकाशन परमेश्वरी, दिल्ली-92.

छोटे पदों पर कार्यरत अधिकारियों पर ही देखा जाता है, ऐसा नहीं है बल्कि इसकी चपेट में बड़े पदों पर आसीन अधिकारियों को भी देखा जाता है। जैसे की नाटक में शंकर शेष ने अपने पात्र प्रिंसिपल के द्वारा प्रस्तुत किया है। अरविन्द जो जूनियर लेक्चरर है उसके नकल पकड़ने के कारण शैक्षणिक सस्थान के शीर्ष पर प्रिंसिपल का पद होता है। यहाँ तक उस घटना का प्रभाव देखा जाता है और प्रिंसिपल अरविन्द की पत्नी लीला को समझाने और केस को वापिस लेने की हिदायत देते हुए कहा है अब यहाँ सवाल है 40 परिवारों की रोटी का ना की न्याय और सिद्धांत का। जब लीला प्रिंसिपल से प्रेसीडेंट का विरोध करने की बात कहती है तो प्रिंसिपल कहता है -

> "लीला: क्या लोग विरोध नहीं करेंगे?
>
> प्रिंसिपल: किसी की हिम्मत है ? जल्लाद से भी कहीं विरोध किया जाता है ? मुझे तो सुबह से शाम तक गाली देता रहता है और उल्लू का पट्ठा कहता है। पर क्या करूँ ? सुनता हूँ। सुनूँगा नहीं तो जाऊंगा कहाँ ? नौकरी जो करनी है"[37]।

जब शीर्ष के पदों पर बैठे अधिकारी ही हिम्मत नहीं दिखा पाते है जिसके पीछे अनेक प्रकार के कारण छिपे हो सकते हैं उन्हीं में से एक बड़ा कारण जो उभरकर सामने आ रह है व देखा जाता है अक्सर वह अभावग्रस्ता है। क्योंकि महंगाई के कारण आमदनी कम होती जा रही है। जिसके कारण एक मध्यवर्गीय आदमी को अभावग्रसता का सामना करना पड़ता है। अरविन्द और प्रिंसिपल की तरह आर्थिक गैर बराबरी पर टिकी व्यवस्था के साथ समझौता करते देखा जाता है। यही काम आज वर्तमान में भी हो रहा है। जिसके कारण हम स्वतंत्र होकर निर्णय नहीं कर पाते। शैक्षणिक संस्थानों में अनेक प्रकार की विसंगतियां देखी जाती है, इन सभी बातों पर शंकर शेष इस प्रसंग से ध्यान केंद्रित कराना चाहते है। जब सवाल रोटी

---

[37] नाटक 'एक और द्रोणाचार्य'- शंकर शेष , पृष्ठ १२ ;प्रकाशन परमेश्वरी, दिल्ली-92

और सिद्धांत में से एक को चुनने का आता है तो अभावग्रसता के कारण उस सवाल के उत्तर में रोटी को चुना जाता है। आज भी स्थिति ज्यों की त्यों बनी हुई है। जब भीम द्रोणचार्य के घर उन्हें राजपुत्रों का आचार्य बनाने के लिए प्रस्ताव लेकर आते है तो द्रोणाचार्य की पत्नी कृपी द्रोणाचार्य से पूछे बिना ही स्वीकार कर लेती है। तब द्रोणाचार्य कहते हैं –

"द्रोणाचार्य: कृपी, तुमने कुछ सोचने भी नहीं दिया।

कृपी : क्योंकि तुम सोचने के बाद हाँ नहीं कर पाते।

द्रोणाचार्य : लेकिन तुम इसका परिणाम जानती हो ?

कृपी : जानती हूँ। अनाज और कपड़े की समस्या हमेशा के लिए मिट जाएगी। कुछ सम्मान से रह सकेंगे"[38]।

ऐसा नहीं है आज का मनुष्य ही अभावग्रस्त की मार को झेल रहा है पहले भी इस समस्या को देखा जाता रहा था आज भी यह समस्या देखी जा सकती है। सबसे बड़ा कारण यदि कहा जाए तो आर्थिक गैर बराबरी की व्यवस्था का ही नजर दिखाई पड़ता है। जब तक समाज में ये व्यवस्था विद्यमान रहेगी। तब तक समाज में अभावग्रस्ता विसंगति के रूप में अपनी जगह बनाए रहेगी। कृपी की तरह आधुनिक नारी भी सिद्धांत व न्याय की जगह पहले अनाज और कपड़े की समस्या का ही चयन करेगी, यह प्रसंग कोई विडम्बना नहीं है बल्कि यह आधुनिक समाज का आर्थिक यथार्थबोध है। जिसे आज भी भारत के सामाजिक प्राणी भोग रहे है। इस प्रसंग के माध्यम से शंकर शेष आज के यथार्थ को स्पष्ट करना चाहते है कि अभावग्रस्त भारतीय समाज के विकास में अतीत काल में भी बाधक थीं और आज भी बाधक

[38] नाटक 'एक और द्रोणाचार्य'- शंकर शेष , पृष्ठ ३२ ;प्रकाशन परमेश्वरी, दिल्ली-92

देखी जा सकती है। शंकर शेष ने अभावग्रस्त की भयावता तथा उसके दुष्परिणामों को यथार्थ व मार्मिक रूप से उजागर किया है।

बेरोजगारी

बेरोजगारी आज के समय की अत्यंत गंभीर एवं भयावह समस्या बनी हुई है। बेरोजगारी में निरंतर वृद्धि देखी जा रही है। बेरोजगारी की स्थिति पनपने के अनेक कारण है। निरंतर बढ़ती हुई जनसंख्या, मुख्य कारणों में से एक है। वर्तमान समय में बेरोजगारी की समस्या देश के युवकों के समक्ष एक संकट के रूप में उभरी है। आज उच्च शिक्षा प्राप्त करने के बाद भी युवक बेरोजगार है। आज का युवा बेरोजगारी के चलते कुमार्ग का अनुसरण कर रहा है। प्रत्येक वर्ष देश के महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों से हजारों शिक्षित युवक उपाधि लेकर रोजगार के तलाश में निकलते है, लेकिन बहुत कम युवकों को ही रोजगार मिल पाता। लेकिन रोजगार न पाने वालों की सख्या बहुत अधिक आँकी जा सकती है। ये आधुनिक समाज की विडंबना है। बेरोजगारी के संदर्भ में एम एल तथा डीडी शर्मा लिखते हैं " बेकारी न केवल आर्थिक समस्या है वरन एक सामाजिक समस्या भी है। बेकारी व्यक्ति के जीवन को छिन्न भिन्न कर देती है और उसके पारिवारिक संबंधों पर कुप्रभाव भी डालती है"[39]।

> "केन्द्रीय मंत्रालय द्वारा जारी आकड़ों के मुताबिक जुलाई से सितंबर 2020 में सबसे अधिक बेरोजगार 15 से 29 साल के युवा रहे हैं। जुलाई सितंबर 2020 में 15 से 29 वर्ष के लोगों की शहरी बेरोजगारी दर 27.7 फीसदी रही जो अप्रैल-जून में 34.7 फीसदी हो गई"[40]।

---

[39] साठोत्तरी हिन्दी उपन्यासों में सामाजिक समस्याएं- डॉ० देवनारायण,पृष्ठ स.231.

[40] इंटरनेट से आभार

शंकर शेष अपने नाटक *'एक और द्रोणाचार्य'* में बेरोजगारी को भी केंद्र में रखा है। प्रिंसिपल और लीला के संवाद के द्वारा बेरोजगारी की वर्तमान स्थिति को उजागर करने की कोशिश की है। प्रिंसिपल लीला से कहता है -

प्रिंसिपल : " वैसे भी कौन तैयार होता है ? अब तुम ही बताओ, क्या मैं खुशी से नालायक कहलाता हूँ ? पर कहलाता हूँ। नालायक कहलाने के बाद भी खुशी जाहिर करता हूँ। नौकरी जो करनी है। (विराम) अब मेरी बात छोड़ो ,अपनी सोचो। नौकरी छूटेगी तो परेशान कौन होगा? तुम्हीं न ! भोगेगा कौन ? तुम ! घर कौन चलाता है ? क्या बुढ़ापे को नरक बनाना है"[41]।

प्रिंसिपल और लीला के बीच इस संवाद के माध्यम से वर्तमान की बेरोजगारी की स्थिति का मार्मिक किया गया है। बेरोजगारी के डर के सामने न्याय की लड़ाई को छोड़कर अन्याय की लड़ाई में सहयोगी किस प्रकार आज का मध्यवर्ग होता जा रहा है इस यथार्थबोध को स्पष्ट किया है। आज शिक्षक बिगड़ते शैक्षणिक संस्थानों के माहौल को देखकर, चुप्पी साधने में विश्वास करने लगे है। क्योंकि उन्हे अपने परिवार का पालन पोषण करना है जिसके कारण वह किसी अन्य किसी भी मसले में नहीं फँसना चाहते है। जिसके लिए आज वह अन्याय को देखकर भी कई बार अनदेखा करने की कोशिश करना चाहते है। क्योंकि उन्हे अनेक प्रकार के भय परेशान करते है, कभी उनके साथ झगड़ा ना हो जाए ! या फिर उनकी नौकरी खतरे में ना आ जाए। बेरोजगार होने का डर सबसे बड़ा डर बनकर सामने आता है ये आज के समाज की सच्चाई है। जिसे डॉ शंकर शेष प्रेसीडेंट और अरविन्द के माध्यम से दिखाना चाहते है। राजकुमार कॉलेज में गुंडागर्दी व नकल कराता है क्योंकि उसका पिता कॉलेज का मालिक होता है लेकिन उसकी हरकतों से कॉलेज के सभी शिक्षक परेशान होते

[41] नाटक 'एक और द्रोणाचार्य'- शंकर शेष ,पृष्ठ 12 ; प्रकाशन परमेश्वरी, दिल्ली-92

है लेकिन कोई भी इस बात को नहीं उठाना चाहता हैं क्योंकि सभी को नौकरी छूटने का डर परेशान करता है अरविन्द के माध्यम से शंकर शेष शिक्षक वर्ग की परेशानी को समाज के सामने रखने का प्रयत्न करते है कि शिक्षक वर्ग किस मानसिकता मेंरहकर अपना काम करता है उस यथार्थ को स्पष्ट किया है।

"प्रेसीडेंट: मेरा मतलब है, आप लोग। (विराम) वह पिछले तीन सालों से नकल कर रहा था, उसे पकड़ा क्यों नहीं गया?

अरविन्द : यह प्रश्न अपने आप से पूछिए।

प्रेसीडेंट : उसकी बेहूदा हरकतों की मुझसे शिकायत क्यों नहीं की गई ? आप लोगों को डर किस बात का था?

अरविन्द : आपका

प्रेसीडेंट ; मेरा ?

अरविन्द ; हाँ , आपका। अपनी रोटी का। सुरक्षा का"[42]।

डॉ शंकर शेष से अरविन्द के द्वारा रोटी, सुरक्षा आदि जैसे शब्दों का जो प्रयोग किया है वह आज के शिक्षक वर्ग की परेशानी के यथार्थ को बयान किया है। डॉ शंकर शेष दूसरी तरफ ऐसे शिक्षकों को भी चिन्हित करते है जिन के आगे बेरोजगारी से बड़ा सवाल न्याय व सिद्धांत को बचाने का होता है लेकिन उसका परिणाम कितना बुरा हो सकता है इस की एक संभावित रूपरेखा भी दिखाई देती है। 'एक और द्रोणाचार्य' में विमलेंदु एक मृत पात्र है और वह अरविन्द के कॉलेज का ही लेक्चरर होता है लेकिन विमलेंदु एक सैद्धांतिक पुरुष होता है वह अन्याय को नहीं देखना चाहता था वह उसका सामना करने में विश्वास रखता था लेकिन

[42] नाटक 'एक और द्रोणाचार्य'- शंकर शेष , पृष्ठ स.20 ;प्रकाशन परमेश्वरी, दिल्ली-92.

उसे इसकी कीमत अपनी जान से चुकानी पड़ती है लेकिन जब अरविन्द भी अपने सिद्धांतों से समझौता नहीं चाहता तो वह उसे समझाने आता है कि इसके क्या-क्या परिणाम तुम्हें भुगतने पड़ सकते है अरविन्द कहता है कि समझौता करने के लिए मेरी आत्मा नहीं मानती है,

"विमलेंदु: आत्मा? (हंसता) आत्मा क्या चीज होती है? केवल शरीर सत्य है। आत्मा-वात्मा सब बकवास। जानते हो मेरी जवान विधवा पत्नी

अरविन्द : क्या हो गया उसे ?

विमलेंदु : जानते हुए भी पूछते हो! कुछ नहीं छोटी-सी नौकरी कर अपना पेट पाल रही है। बच्ची का पेट पाल रही है। कभी कभार मेरी याद में रोती है।

अरविंद : तो ?

विमलेंदु : पर उसे लोग चैन से कहां रहने देते हैं। उसका एक नया अफसर आया है। साठ साल उम्र है उसकी। वह डोरे डाल रहा है मेरी पत्नी पर। प्रमोशन का लालच दे रहा। है अब बोलो, कहाँ है आत्मा ? शरीर केवल शरीर"[43]।

यदि एक शिक्षक अन्याय के विरुद्ध लड़ने की सोचता है तो उसे हर तरफ देखना पड़ता है क्योंकि यदि वह लड़ाई लड़ने की ठान लेता है तो उसका खामियाजा वह स्वयं ही नहीं भुगतता बल्कि उसका परिवार भी उसका जिंदगी भर भुगतान करता है जिसके कारण उन्हे बेकारी, भुखमरी, लाचारी, अन्याय, बेरोजगारी आदि सभी परेशानियों से जूझना पड़ता है। जैसे विमलेंदु की जवान विधवा को ये सब देखना पड़ता है ये कहानी भले की एक नाटक की हो लेकिन साहित्य मेंकल्पना भी यथार्थ के आधार पर ही बनती है और डॉ शंकर शेष ने विमलेंदु के माध्यम से आज के शिक्षक के मानसिक यथार्थ को दिखाया है और दूसरी तरफ

[43] नाटक 'एक और द्रोणाचार्य'- शंकर शेष ,पृष्ठ स.55 ; प्रकाशन परमेश्वरी, दिल्ली-92.

शंकर शेष इस यथार्थ को भी स्पष्ट करना चाहते है कि बेरोजगारी के डर से आज का मध्यवर्ग समझौतावादी क्यों होता जा रहा है ? और दर-दर भटकने के भय से आज का शिक्षक वर्ग चापलूसी क्यों करने लगा है ? ये सभी सवाल हमेंसोचने पर मजबूर करते हैं।

मध्यम वर्ग का अवसरवादी चरित्र

आर्थिक गैर-बराबरी पर टिकी व्यवस्था में मध्यवर्ग ने अपनी अभावग्रस्ता, बेरोजगारी आदि समस्याओं से लड़ने के लिए अवसरवादी चरित्र को अपनाने का शायद मन बना लिया है क्योंकि आज का मध्यवर्ग सामूहिकता के आधार पर अपने फैसले नहीं करता बल्कि व्यक्तिगत आधार पर अपने फैसलों का चयन करता नजर आता है। जिसके कारण अमीर-गरीब के बीच की खाई दिनोंदिन और गहरी होती जा रही है, क्योंकि जब फैसले सामूहिकता के आधार पर नहीं होंगे तो उसके कारण समाज मेंअसमानता का फैलाव होगा और लिए गए फैसले का लाभ व्यक्तिगत लाभ तक ही सीमित हो कर रहा जाएगा।

डॉ शंकर शेष ने मध्यवर्ग के अवसरवादी चरित्र को अपनी कृति '*एक और द्रोणाचार्य*' के माध्यम से दिखने की कोशिश की है। अरविन्द, प्रिंसिपल, लीला, कृपी आदि के द्वारा अवसरवादी चरित्रो को अभिव्यक्ति दी है। ये सभी व्यक्तिगत लाभ के लिए किस तहर अपने सिद्धांतों को भूल जाते है और अपने लाभ के लिए अन्याय का भी साथ देते है। डॉ शंकर शेष ने अवसरवादिता चरित्र के बहुत की यथार्थपूर्ण व मार्मिक चित्र खींचे है नाटक में लीला अरविन्द को प्रेसीडेन्ट का साथ देने के लिए कहती है लेकिन अरविन्द मना कर देता है लीला कहती है इसका तुम्हें परिणाम मालूम है ! अरविन्द कहता है हाँ, बहुत अच्छे से। अरविन्द कहता है –

"अरविन्द: हाँ , समझता हूँ। तुम्हारा यह बंगला छिन जाएगा। टेलीफोन कट जाएगा। मुफ़्त के चपरासी नहीं रहेगे। तुम प्रिंसिपल की औरत नहीं कहलाओगी"[44]।

यह पर लीला के माध्यम से शंकर शेष ने मध्यमवर्ग के अवसरवादी चरित्र कर यथार्थ को बड़ी प्रामाणिकता से अभिव्यक्त किया है। आज का मध्यमवर्ग किस तरह व्यक्तिगत लाभ के लिए अन्याय का भी साथ देने में नहीं हिचकता है अक्सर ऐसा देखे को मिलता है, इस सच्चाई को बयान करने की कोशिश की है। डॉ शंकर शेष ने अवसरवादी चरित्र को पौराणिक कथा के द्वारा भी स्पष्ट करने का प्रयास किया है महाभारत के पात्र द्रोणाचार्य और कृपी के संवाद के माध्यम अवसरवादी चरित्र को दिखाने की कोशिश की है द्रोणाचार्य कृपी से कहता है -

"द्रोणाचार्य: वही दिन था। उस दिन भूख मेरे सिद्धांत से बड़ी हो गई। प्रतिशोध ने विवेक को जीत उस दिन तूमने मुझे भड़काया। उस दिन तुमने मुझे राजकीय अन्न की दासता में धकेला तुम्हें अश्वथामा के लिए दूध चाहिए था, आपने लिए वस्त्र, राजकीय सम्मान। क्यों मुझे सुविधा भोगी होने ले लिए उसकाया? बोलो, मुझे राजकीय अन्न की दासता से समझौता करने पर किसने विवश किया"[45] ?

आज का द्रोणाचार्य कौन है ? और द्रोणाचार्य को द्रोणाचार्य किसने बनाया ? क्या आर्थिक समस्या से लड़ने का एक मात्र रास्ता अवसरवादी होना ही है ? क्यों सिद्धांत भूख के आगे हार जाता है ? आदि सवाल आज की व्यवस्था पर डॉ शंकर शेष खड़े करते है।

---

[44] शंकर शेष , नाटक 'एक और द्रोणाचार्य' प्रकाशन परमेश्वरी, दिल्ली-92, पृष्ठ 46.

[45] नाटक 'एक और द्रोणाचार्य'- शंकर शेष , पृष्ठ स.60 ; प्रकाशन परमेश्वरी, दिल्ली-92

3.4 सांस्कृतिक यथार्थबोध

सृष्टि के आरंभ से अन्य प्राणियों की तरह मनुष्य भी प्राकृतिक प्राणी था किंतु अपने सृजनात्मक गुणों के कारण वह सांस्कृतिक प्राणी बन गया। अन्य प्राणियों की तरह लड़ने की प्रवृति के स्थान पर उसने परस्पर मैत्री और प्रेम के रास्ते को चुना। इसी के परिणाम स्वरूप संस्कृति का जन्म हुआ। संस्कृति की अवधारणा समाज की अवधारण के साथ जुड़ी हुई है। संस्कृति मनुष्य के दैनिक जीवन को संयत और सुसंयत बनाती है। संस्कृति मानव समाज का मार्गदर्शन करती है*। "संस्कृति मानव जीवन को विकृति से बचाकर सुकृति की ओर अग्रसर करनेवाला एक ऐसा रचनात्मक प्रत्यय है जो अतीत से प्रेरित वर्तमान से प्रतिबद्ध और भविष्य के प्रति उन्मुख हैं"*[46]।

व्युत्पति की दृष्टि से संस्कृति शब्द पर विचार किया जाय, तो ज्ञात होता है कि *'संस्कृति'* शब्द संस्कृत से निष्पन्न है। *'सम' उपसर्ग पूर्व 'कृ' धातु से 'भूषण' अर्थ में 'सुट' का आगम करके 'कितन' प्रत्यय करने में संस्कृति शब्द की व्युत्पति होती है। इसका अर्थ होता है – 'सम्यक कृति' या 'चेष्टा'। इस प्रकार सम्यक कृतियों और परंपरा से प्राप्त संस्कारों की समष्टि को संस्कृति कह सकते हैं"*[47]। संस्कृति के अर्थ के बारे में विद्वानों में मतभेद रहा है। क्योंकि जैसे जीवन की परिभाषा को किसी निश्चित व्याख्या में बाद नहीं कर सकते वैसे ही संस्कृति की परिभाषा को व्यक्त नहीं किया जा सकता। विभिन्न विद्वानों ने भिन्न भिन्न पहलुओ के आधार पर परिभाषा देने का प्रयत्न किया है। विद्वानों का अभिमत है की "समस्त सीखा हुआ व्यवहार ही संस्कृति है। इसका मतलब यह हुआ कि मनुष्य ने धर्म, आचार-विचार और रहन-सहन, साहित्य, कला, ज्ञान-विज्ञान, राजनीति, नैतिकता आदि जिन मान्यताओं को परंपरा से अर्जित एवं निर्धारित किया है, वे ही उसकी संस्कृति के तत्व है।

---

[46] निराला काव्य का सांस्कृतिक पक्ष – डॉ हरिश्चंद्र वर्मा पृष्ठ स. 41

[47] आर्य संस्कृति का उत्कर्ष प्रकरण-1- महादेवशास्त्री दिवाकर

संस्कृति किसी प्रांत विशंकर शेष पर सीमित नहीं है। मनुष्य के जीवन में परिवर्तन होता है उसमें परंपरागत संस्कारों का बड़ा हाथ होता है। मानव के भौतिक परिवर्तन में हमेशा उसके बौद्धिक विचारों का बड़ा योगदान रहता है, लेकिन आंतरिक विचारों का निर्माण उसके संस्कारों से होता है। भारतीय संस्कृति आर्य, द्रविड, शक, हूण, मुसलमान तथा अंग्रेजो आदि कितनी ही जातियों का जन्म संस्कृतियों के सम्मिश्रण से हुआ है।

डॉ शंकर शेष ने अपने नाटक *'एक और द्रोणाचार्य'* के द्वारा सांस्कृतिक यथार्थबोध को अभिव्यक्त दी है उन्होंने बदलते सामाजिक दृष्टिकोण को अपनी साहित्यिक दृष्टि से चित्रित किया है किस प्रकार आज भारतीय संस्कृति के आयाम परिवर्तित होते जा रहे है। उन आयामों को अपने नाटक के माध्यम से दिखाया है। इन आयामों के केंद्र में संयुक्त परिवारों के विघटन की समस्या, रोजगार की समस्या, युवा वर्ग का महत्वाकांक्षी रूप, नैतिकता का बदलता स्वरूप, जातिवाद व जाति पद्धति की समस्या, राजनीति के कारण हिंसा की समस्या, आदि समस्याओं के कारण भारतीय संस्कृति के वर्तमान सांकृतिक यथार्थबोध को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

संयुक्त परिवारों के विघटन की समस्या

भारतीय समाज में सबसे छोटी इकाई परिवार है। परिवारिक संस्था मानव की सामाजिक संस्थाओ में आधारभूत सर्वव्यापी तथा महत्वपूर्ण संस्था है। संस्कृति के सभी स्तरों में किसी न किसी प्रकार का पारिवारिक संगठन पाया गया है। एक संयुक्त परिवार में तीन या तीन से अधिक पीढियों के सदस्य साथ-साथ एक ही घर में निवास करते थे। उनकी संपत्ति सामूहिक होती थी। तथा उनका खान-पान, रहन-सहन तथा सामाजिक और पारिवारिक कृत्य संयुक्त रूप में होते थे। भारत में बीसवी सदी से पूर्व अधिकांशत: संयुक्त परिवारों का ही प्रचलन था। संयुक्त परिवारों में व्यक्ति को आर्थिक, सामाजिक सुरक्षा प्राप्त होती है। अनाथ, अपंग,

विधवा आदि का भी पालन पोषण होता है। और संयुक्त परिवार में प्रत्येक सदस्य की सुरक्षा और सुविधा का ध्यान रखा जाता था। इस समस्या को डॉ शंकर शेष ने 'एक और द्रोणाचार्य' में विमलेंदु की जवान विधवा पत्नी के माध्यम से व्यक्त किया है विमलेंदु एक कॉलेज में लेक्चरर होता है उसे गुंडों के हाथों मरवाया जाता है क्योंकि वह बिगड़ती शिक्षण व्यवस्था का विरोध करता है और वह अपने नैतिक सिद्धांतों से समझौता नहीं चाहता था लेकिन इस बात की कीमत उसे अपने जान से चुकानी पड़ती है और उसका खामियाजा वह स्वयं तो भोगता ही है लेकिन उसके मरने के बाद उसकी जवान विधवा भी उसका भुगतान करती है विमलेंदु अरविन्द से कहता है –

"विमलेंदु; जानते हो, मेरी जवान विधवा पत्नी….

अरविन्द ; क्या हो गया उसे ?

विमलेंदु ; छोटी-सी नौकरी कर अपना पेट पाल रही है। बच्ची का पेट पल रही है। कभी -कभार मेरी याद में रोती है।

अरविन्द ; तो ?

विमलेंदु ; पर उसे लोग चैन से कहाँ रहने देते हैं ? उसका एक नया अफसर आया है। साठ साल उम्र है उसकी। वह डोरे डाल रहा है मेरी पत्नी पर। प्रमोशन का लालच दे रहा है"[48]

शंकर शेष ने एकल परिवार व्यवस्था की समस्या को दिखाया है यदि विमलेंदु एक सयुक्त परिवार से होता तो, उसकी पत्नी को शायद इस समस्यों का सामना करना पड़ता। लेकिन आधुनिकता के दौर में संयुक्त परिवार संस्कृति पर हमला किया है जिससे आज सयुक्त

[48] नाटक, एक और द्रोणाचार्य - शंकर शेष , पृष्ठ स.55 ; परमेश्वरी प्रकाशन, दिल्ली-12

परिवारों की संख्या कम होती जा रही है और जिसका खामियाजा मानव जाति भुगत रही है। डॉ शंकर शेष इस सांस्कृतिक यथार्थ को स्पष्ट किया है।

संयुक्त परिवारों के विघटन के कारण में सबसे बड़ा कारण *'आय की असमानता'* जिसके कारण आज मध्यवर्ग परिवार एकल परिवार मेंतब्दील होते जा रहे है।

नैतिकता

नैतिकता का चित्रण करते समय अनैतिकता का चित्रण कारण पड़ता है। लोगों में नैतिकता का एहसास तो होता ही है। वे सही व गलत, अच्छे व बुरे तथा उचित और अनुचित को पहचान सकते है। वे सही रास्ते पर चलते हैं लेकिन परिस्थितियां प्रतिकूल बनती है तब आदमी गलत रास्ते पर चलता है। डॉ शंकर शेष ने *'एक और द्रोणाचार्य'* नाटक मेंनैतिकता के सवाल को बहुत ही गंभीरता से व्यक्त किया है नैतिकहीनता से समाज में अनेक प्रकार की विसंगतियाँ जन्म ले रही हैं उन सभी विसंगतियों को अभिव्यक्त करने की कोशिश शंकर शेष करते हैं। विमलेंदु एक शिक्षक होता है जिसे शिक्षण व्यवस्था मेंबढ़ती गुंडागर्दी का शिकार होना पड़ता है विमलेंदु का कसूर बस इतना होता है कि वह एक बड़े आदमी के लड़के को नकल करते पकड़ लेता है, उसे अपने काम के प्रति ईमानदारी का इनाम मौत के रूप मेंमिलता है। यदु अरविन्द को समझते हुए कहता है-

> "यदु: विमलेंदु का साथ किसने दिया? सब बुजदिलों की तरह घर पर ही बैठे रहे। गुंडों ने बीच चौराहें पर उसकी जान ले ली-क्या हुआ ? उसने भी तो एक बड़े आदमी के लड़के को नकल करते ही तो पकड़ था। एक आदमी तों गवाही देने जाता। सब साले दुम-दबाकर बैठ गए"[49]।

---

[49] नाटक, एक और द्रोणाचार्य - शंकर शेष , पृष्ठ स.9 ; परमेश्वरी प्रकाशन, दिल्ली-12

क्या हमारी नैतिकता यही कहती है कि जो लोग अपने काम को लेकर दिल से समर्पित है उसे हम अपने व्यक्तिगत लाभ के लिए उनके साथ बतमीजी व गुंडागर्दी करें ? और जान से मरने की धमकी व जान से मार दे। आज भी शिक्षण संस्थानों में ऐसी घटनाओं को देखा जा सकता है। आज लोग सच्चाई के साथ खड़े होने में डरते है ऐसा क्यों ? सत्य का साथ देना आज कठिन होता जा रहा है क्यों ? आज आदमी इतना संवेदनहीन क्यों होता जा रहा है ? उसे नैतिकता पर चलने से दूर कौन कर रहा है ? व्यक्तिवादी प्रवृति का दिनोंदिन बढ़ना ही इन सभी विसंगतियों का कारण है।

डॉ शंकर शेष आज के अवसरवादी शिक्षकों के चरित्र का भी पर्दा-फाश करते हैं। भारतीय संस्कृति में शिक्षकों का स्थान सदैव सम्मानजनक रहा है लेकिन आधुनिकता के दौर में आज शिक्षक अपना सम्मान व महत्व कम करते जा रहे हैं। इसका प्रमुख कारण व्यक्तिवादी व अवसरवादी मानसिकता है जिसके चलते आज के कुछ शिक्षक अपने व्यक्तिगत लाभ के लिए किसी भी हद तक जा सकते है। इस मानसिकता से ग्रसित शिक्षकों के यथार्थ को *'एक और द्रोणाचार्य'* नाटक में बहुत ही प्रामाणिकता से अभिव्यक्त किया गया है। अरविन्द को जूनियर लेचरर से प्रिंसिपल बना दिया जाता है, वो इसलिए क्योंकि वह प्रेसीडेंट के लड़के के खिलाफ दी गई नकल करने की सच्ची रिपोर्ट को वापिस ले लेते है यह बोलकर की वह नकल नहीं कर रहा था जिसका विरोध अन्य छात्र करते है लेकिन विरोध करने वाले सभी छात्र को कॉलेज से निकलवा दिया जाता है –

> "अरविन्द: इन लड़कों पर हमने पुलिस के डंडे बरसवाए थे। उनके अगुआ लोगों को कॉलेज से निकाला था क्या वे चुप बैठ जाएंगे? मैंने सबके सामने झूठ बोल था"[50]।

[50] नाटक, एक और द्रोणाचार्य - शंकर शेष , पृष्ठ स.42 ; परमेश्वरी प्रकाशन, दिल्ली-

आज के कुछ एक शिक्षक अपनी व्यक्तिगत तरक्की के लिए वह अरविन्द बन जाते है और बच्चों के भविष्य से खेलते है नैतिकता को बिल्कुल तार-तार करते है जिसका खामियाजा छात्रों को ही नहीं बल्कि देश को भी उठाना पड़ता है

जाति व्यवस्था

हम सब को पता है कि वर्ण व्यवस्था भारतीय सामाजिकता का प्रमुख आधार है। जाति प्रथा ने अपने देश में संस्कारों को भी जड़ और स्थिर बना दिया है। ब्राह्मणवाद तो वर्ण व्यवस्था पर टिका है और वर्ण व्यवस्था गुण, कर्म, से नहीं बल्कि जन्म और जाति से चलती है जाति व्यवस्था के अस्पृश्यता संबंधी प्रतिबंध के अनुसार भारतीय सामाजिक व्यवस्था के उच्च जाति अथवा वर्ग के व्यक्ति निम्न जाति के व्यक्ति को स्पर्श नहीं करते, उसे अपने शरीर से नहीं छूते हैं आप उसे भी स्वयं नहीं छूने देते हैं। उच्च जाति का जो व्यक्ति शूद्रो के साथ उठे बैठेगा तो उच्च जातिवाले उसका बहिष्कार कर देते है दूसरी तरह निम्न जाति के लोग उच्च जाति के लोगों के घरों में काम करेगें लेकिन खान-पान में उनका हाथ लगाना भी स्वीकार नहीं करते है। शिक्षा के प्रसार के बावजूद भी आज भी जाति-व्यवस्था काम कर रही है कहने को हम आज आधुनिक दौर में जी रहे है लेकिन सोच आज भी हमारी जातिभेद के विषय में मध्यकाल की ही है इस जातिवाद व जातिभेद को डॉ शंकर शेष ने ‘ एक और द्रोणाचार्य’ नाटक के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। द्रोणाचार्य को जब एकलव्य गुरुदेव कह कर बोलता है तो द्रोणाचार्य कहते है कि मैं तुम्हारा गुरु नहीं हूँ, लेकिन जब एकलव्य कहता कि दस वर्ष पहले मैंने आपसे प्रार्थना की थी कि मुझे आप अपना शिष्य बना लो, लेकिन आपने मेरी प्रार्थना को ठुकरा दिया था तो द्रोणाचार्य कहते है –

“द्रोणाचार्य: ठीक ही किया था (विराम) शास्त्रों के अनुसार मेरी विधा केवल ब्राह्मणों और क्षत्रियों के लिए है।

एकलव्य: लेकिन योग्यता और प्रतिभा?

द्रोणाचार्य :   इन दोनों से व्यवस्था बड़ी है।

एकलव्य :   क्या यह सच है ?

द्रोणाचार्य :   हाँ, मेरा व्यक्तिगत अनुभव भी यही कहता है"[51]।

डॉ शंकर शेष मिथकीय कथा के माध्यम से आज की वर्तमान स्थिति पर हमला बोल रहे है आज भी व्यवस्था का सवाल प्रतिभा से बड़ा ही नजर आता है आज भी प्रतिभा कही कोनों में तड़पती व संघर्ष करती नजर आती है, अनेकों एकलव्य अपनी प्रतिभा को लेकर इस व्यवस्था के चक्कर काट रहे है आज लोकतान्त्रिक व्यवस्था में भी एकलव्य अपने हक के लिए अथक प्रयास करता है फिर भी उसे अपनी मंजिल की लिए कठोर संघर्ष करता देखा जाता है आज भी अक्सर लगता है कि शिक्षा पर अधिकार उच्चजाति वर्ग का ही है। द्रोणाचार्य की तरह आज का शिक्षक भी व्यवस्था का कलपुर्जा बनाता जा रहा है।

जब एकलव्य द्रोणाचार्य से गुरुदक्षिणा के लिए कहता है कि आप मुझसे गुरु-दक्षिणा में कुछ भी मांग सकते है गुरु द्रोणाचार्य एकलव्य से उसका अंगूठा गुरु दक्षिणा मेंमाँग लेते है इस घटना को देकर अर्जुन द्रोणाचार्य से पूछता है कि मुझे आपकी ये क्रूरता समझ नहीं आती , तब द्रोणाचार्य कहते है-

"द्रोणाचार्य; एकलव्य का अँगूठा बने रहने का अर्थ समझते हो? धनुर्विधा पर उसका अधिकार हो जाएगा। धीरे-धीरेउसकी जाति का अधिकार हों जाएगा। (विराम) शक्तिशाली होने के बाद ये क्षत्रियों से स्पर्धा करेगें और परिणाम होगा- वर्णश्रम धर्म पर

[51] नाटक, एक और द्रोणाचार्य - शंकर शेष , पृष्ठ स.34 ; परमेश्वरी प्रकाशन, दिल्ली-12

संकट। (विराम) उसका अंगूठा छीनकर मैं इन संभावनाओं को हमेशा के लिए समाप्त कर दूँगा। समझे!"[52]

आज भी कुछ शिक्षकों के द्वारा द्रोणाचार्य की शिक्षा का अनुकरण देखा जा सकता है। वह द्रोणाचार्य की तरह ही व्यवस्था को ही सब कुछ मानकर अपने कार्य को अंजाम देते है। और प्रतिभा का गला घोंटने का काम करते है।आज भी दलित जाति व अनुसूचित वर्ग के लोगों की सीटों पर उच्च जाति के बच्चों को बैठा दिया जाता है यह भी एक तरह से अँगूठा मांगने के समान है। सीट को छीन लेना उनके जीवन को छीन लेने के बराबर है। आज भी मनुवादी ताकते नहीं चाहती है कि दलित व अनुसूची जाति वर्ग के लोग अच्छे व बड़े पदों पर बैठे। वह भी पढ़-लिखकर अपने हकों को मांगने के लायक बने, मनुवादी मानसिकता के शिक्षक आज भी नहीं चाहते कि कोई दलित वर्ग से आने वाला कोई आदमी उनके पास बैठे। ये आज की कड़वी सच्चाई है इसलिए वह भी द्रोणाचार्य की रणनीति को अपनाकर दलित व अनुसूचित वर्ग के लोगों को प्रतियोगिता की लाइन से ही बाहर का रास्ता दिखाने का काम करते है।और उनके आगे बढने की संभावनाओं को हमेशा के लिए समाप्त करने की कोशिश करते नजर आते है।

[52] नाटक, एक और द्रोणाचार्य - शंकर शेष , पृष्ठ स.36 ; परमेश्वरी प्रकाशन, दिल्ली

उपसंहार

साहित्य और समाज का एक दूसरे से गहरा संबंध है। साहित्य समाज का प्रतिबिंब मात्र नहीं हैं, बल्कि समाज के भीतर जो मौजूद गहन सामाजिक अनुभूतियां हैं, उसको भी दिखाने का प्रयास साहित्य के माध्यम से किया जाता है। समय-समाज की जटिलताओं, विकृतियों और संभावनाओं को भी साहित्य के द्वारा उद्घाटित किया जाता है। उद्घाटन की यह प्रकिया साहित्य के अंतर्गत आने वाली विभिन्न विधाओं के माध्यम से किया जाता है। और इसमें नाटक विधा की एक महत्वपूर्ण भूमिका है।क्योंकि भारतेन्दु ने इस बात को अच्छी तरह समझ लिया था कि सामाजिक वास्तविकता की सबसे यथार्थ अभिव्यक्ति नाटकों में ही हो सकती हैं। इसीलिए उन्होंने छंदोंबद्ध नाटकों के स्थान पर गघ का प्रवर्तन किया। वो इसलिए, क्योंकि नाटक विघा में अतुलनीय प्रतिभा है वह अपने रंगमच के माध्यम से जन -जन के सम्पर्क में बड़ी तीव्रता से आती है। इसलिए ही आचार्य रामचन्द्र ने अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास मे आश्चर्य प्रकट करते हुए लिखा है कि “विलक्षण बात यह है की आधुनिक गघ साहित्य की परंपरा का प्रवर्तन नाटकों से हुआ”[1] डॉ शंकर शेष के नाटकों को लेकर मेरा आकर्षण कई वजहों से रहा है। उन्होंने शहरी जीवन यथार्थ के माध्यम से सामाजिक विषमताओं को जिस तरह से वे प्रस्तुत किया है और मध्यवर्ग समाज की विसंगतियों को दिखाया है उससे कई तरह के सवाल मेरे भीतर जागृत हो रहे थे।

पहला सवाल जो मुझे परेशान करता है कि आधुनिक कहे जाने वाले समाज में आज भी जातिवाद जैसी कुसंस्कार जिंदा है क्यों ? शिक्षित कहे जाने वाले समाज में नैतिकता का हनन क्यों हो रहा है ? अवसरवाद व व्यक्तिवाद की प्रवृति आज समाज में निरंतर बढ़ती जा रही है ? आधुनिक दौर में भी नारियों को अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करना पड़ता है ?

---

[1] नाटक – बच्चन सिंह, पृष्ठ स.23

वह आज भी अपनी सुरक्षा व अस्तित्व की लड़ाई को लड़ती नजर आती है और पुरुष प्रधानता उनकी उम्मीदों को कुचलता दिखाई देता है ? शिक्षा के क्षेत्र में आज द्रोणाचार्य की परंपरा को शिक्षक वर्ग अपनाता हुआ नजर आता है ?आदि सवालों को डॉ शंकर शेष अपने साहित्य में उठाते है और समाधान की ओर संकेत भी करते हैं।

जैसे की मेरे शोधकार्य का संबद्ध यथार्थ से जुड़ा है तो मैंने अपने शोधकार्य में यथार्थवाद को भी समझाने की कोशिश की है यथार्थवाद मात्र यथार्थ चित्रण नहीं,अपितु कल्पना-मिश्रित यथातथ्य का प्रस्तुतीकरण है इसके माध्यम से समाज को सुंदरतम स्थितियों की ओर उन्मुख करने का प्रयास किया जाता है। यथार्थवाद सुख-दुखों और अभावों का भी उल्लेख करता है लेकिन ये एक बहुत बड़ी भ्रांति है कि यथार्थवाद में केवल कुरूप, वीभत्स तथा घिनौने पक्षों को हो अभिव्यक्त किया जाता है। सीमित और यदि कम शब्दों में यथार्थवाद को यदि मुझे अभिव्यक्त करना होगा तो मैं कहूँगा की यथार्थवाद सत्य को खोजने की एक कला है, और वह उसे ईमानदारी तथा सम्पूर्ण वस्तुपरकता के साथ उजागर भी करता है।।

डॉ शंकर शेष के नाटक 'एक और द्रोणाचार्य' में मुझे अपने सभी सवालो की अभिव्यक्ति मिलती है । इस नाटक में शैक्षिणक संस्थानों की वास्तविकता को बहुत प्रामाणिकता तथा विश्वसनीयता के साथ अभिव्यक्त किया है। शैक्षिण संस्थानों में समस्याओं का ऐसा कोई भी पहलू नहीं है जिसे उन्होंने स्पर्श न किया हो, शिक्षा के क्षेत्र में नैतिकता पर सवाल उठाया है जबकि वह स्वयं एक अध्यापक रहे हैं। यदि सही समय रहते इस सवाल को समझा नहीं गया तो शिक्षा के क्षेत्र को बहुत हानियों का सामना समाज व देश को करना पड़ सकता है। किस प्रकार आज उपभोक्तावादी मानसिकता का दीमक हमारी शैक्षणिक संस्थानों को दिनो दिन खोखला कर रहा है इस समस्या की ओर हमारा ध्यान डॉ शंकर शेष करवाना चाहते हैं शिक्षा के क्षेत्र में नैतिकता सवाल कितना अहम भूमिका रखता है और इसके दुष्परिणामों को भी वह अभिव्यक्त करते हैं। लीला, यदु , अरविन्द आदि पात्रो के संवादों के

माध्यम, से उन्होंने आधुनिक शिक्षा व्यवस्था के बिगड़ते स्वरूप को समाज के सामने रखा है और समाज को इस समस्या पर सोचने के लिए मजबूर किया है और अपने नाटक के माध्यम से इस व्यवस्था को सुधारने के संकेत भी देते है और व्यवस्था में कहां मूल रूप से समस्या है उसे उजागर करने का प्रयास किया है।

नाटक की पात्र अनुराधा के माध्यम से आज की नारी के अधिकारों और सामाजिक व्यवस्था का नारी के प्रति क्या रवैया है ? उसको दिखाया गया है आज की सामाजिक व्यवस्था कितनी अनुकूल है ? नारी के अधिकारों को लेकर उसके यथार्थ को अभिव्यक्ति दी है। आज भी नारी अपने आप को शैक्षणिक संस्थानों में कितना सुरक्षित पाती है ? उसे अनुराधा के माध्यम से बताने की कोशिश की है। संविधान के द्वारा नारी को स्वतंत्रता का अधिकार देने के बाद भी नारी को अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करना पड़ता है। उसकी मार्मिक अभिव्यक्ति दी है। दूसरी तरफ व्यक्तिवादी प्रवृति ने भारतीय सामाजिक संरचना को कितना प्रभावित किया है जिससे समाज में लोग आज व्यक्तिगत लाभ के लिए काम करते अधिक दिखाई देते हैं इस बात को उन्होंने नाटक के पात्र प्रिंसिपल के द्वारा बड़ी प्रामाणिकता से व्यक्त किया है प्रिंसिपल लीला से कहता है-

"प्रिंसिपल : प्रेसिडेट साहब आखिर मालिक है, अन्नदाता है। उनका कॉलेज, उनकी मर्जी। इसलिए तो कहता हूँ। नौकरी करनी है तो कान बंद कर लो। आंखे मूँद लो। मुहँ खुला रखो- बोलने के लिए नहीं, रोटी खाने के लिए"[2]।

शंकर शेष ने व्यक्तिवादी मानसिकता को समाज के लिए एक गंभीर समस्या के रूप में नाटक अभिव्यक्ति किया है और इसके दुष्परिणामों को प्रमुखता से स्पष्ट किया है। शंकर शेष ने अपने इस नाटक के माध्यम से राजनैतिक यथार्थबोध को भी दिखाया है विकृत होती

[2] एक और द्रोणाचार्य – शंकर शेष, पृष्ठ स. 92; प्रकशन परमेश्वरी 11 दिल्ली-92

राजनीति तथा उसका भारतीय समाज पर क्या पर प्रभाव है उसे दिखाया है और सत्ता की राजनीति से लेकर शैक्षणिक संस्थानों की राजनीति के सभी पहलुओं को उन्होंने अपने नाटक में व्यक्त किया है की किस प्रकार जनविरोधी राजनीति निर्दोषों की जान को ले लेती है। उसका कोई अपराध भी नहीं होता। किस प्रकार एक आम आदमी तिकड़मबाजी राजनीति के नीचे पीसा जाता है उसके हितों को अपने व्यक्तिगत लाभ के लिए छीन ले जाता है। अपनी राजनीति व व्यक्तिगत लाभ के लिए आज नेता किसी के भी भविष्य से खेलते है। जैसे नाटक मे प्रेसीडेंट अपनी राजनैतिक छवि को बनाए रखने के लिए *पात्र अनुराधा* को आत्महत्या करने पर विवश कर देता है। ऐसा महूसस होने लगा है कि भारत देश में राजनीति स्वार्थपरकता, अवसरवादिता व अपराधिकारण और जनविरोधों को अपने पैरों तैले कुचना अन्याय नहीं मानती, बल्कि उसे न्याय समझती है इस प्रकार की मानसिकता से आज के नेता काम कर रहे है इस यथार्थ को डॉ शंकर शेष बड़ी प्रामाणिकता से अभिव्यक्त करते हैं।

डॉ शंकर शेष आर्थिक यथार्थबोध को मध्यवर्ग का अवसरवादी चरित्र, गरीबी, अभाव का जीवन, आर्थिक गैरबराबरी पर टिकी व्यवस्था, बेरोजगारी, भय और मोहभंग आदि बिन्दुओं के द्वारा कर्म-वार तरीके से अभिव्यक्त करते हैं। डॉ शंकर शेष ने भारतीय संस्कृति मे आए घातक परिवर्तन एवं उसमें विषमताओं को जातिवाद, संयुक्त परिवारों का विघटन, नैतिकता का समाज में हास आदि बिन्दुओं के रूप में नाटक मे अभिव्यक्ति दी है।

अंत मे कहा जा सकता है की ‘एक और द्रोणाचार्य’ में एक और जहाँ समाज में व्याप्त विभिन्न दुष्प्रभाव,गलत आचरणों अनेक समस्यों को व्यक्त करते हैं , वही दूसरी और किसी-न-किसी रूप में उसके समाधान के उपाय की ओर भी समाज को संकेत देते चलते हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. आधार ग्रंथ

1. शंकर शेष, 'एक और द्रोणाचार्य' (नाटक), दिल्ली, परमेश्वरी प्रकाशन -2013
2. शिव कुमार मिश्र, 'यथार्थवाद', नई दिल्ली, दरियागंज प्रकाशन -2009

2. सहायक ग्रंथ

1. आधुनिक साहित्य- नंदुलारे वाजपेयी, राजकमल प्रकाशन, प्रा० लि० 1-बी , नेता जी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली 110002, संस्करण 2011
2. औरत : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन – संपादक. ज्ञानेन्द्र रावत,विश्व भारती पब्लिकेशन, 437/4B अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2006
3. शंकर शेष की रचनावली, (खण्ड एक) - डॉ० विनय, कवितबा घर प्रकाशन, दरियागंज नई दिल्ली 110002, संस्करण 1990
4. शंकर शेष की रचनावली, (खण्ड दो) - डॉ० विनय, कवितबा घर प्रकाशन, दरियागंज नई दिल्ली 110002, संस्करण 1990
5. शंकर शेष की रचनावली, (खण्ड तीन) - डॉ० विनय, कवितबा घर प्रकाशन, दरियागंज नई दिल्ली 110002, संस्करण 1990
6. शंकर शेष की रचनावली, (खण्ड चार) - डॉ० विनय, कवितबा घर प्रकाशन, दरियागंज नई दिल्ली 110002, संस्करण 1990
7. शंकर शेष की रचनावली, (खण्ड पाँच) - डॉ० विनय, कवितबा घर प्रकाशन, दरियागंज नई दिल्ली 110002, संस्करण 1990
8. गल्प का यथार्थ कथालोचन के आयाम - प्रो० सुवास कुमार, वाणी प्रकाशन, दरियागंज नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2010

9. मुक्तिबोध की कविता में यथार्थबोध - शशिबाला शर्मा, शब्द और शब्द प्रकाशन, अशोक विहार, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1980

10. नाटककार शंकर शेष – सुनील कुमार लवटे

11.हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद - त्रिभुवन सिंह, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, प्रथम संस्करण 1965

12. साहित्य और विचारधारा – नामवर सिंह राजकमल प्रकाशन, प्रा० लि० 1-बी , नेता जी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली 110002

13. हिन्दी के प्रतीक नाटक - डॉ० रमेश गौतम

14.यथार्थवाद पुर्नमूल्यकांन- डॉ अजब सिंह , ज्ञान गंगा, 205-सी चावडी बाजार, दिल्ली प्रथम संस्करण 1984

15. साहित्य और यथार्थ – हवार्ड फास्ट (अनुवाद विजय सुषमा) अरुणोदय प्रकशन दिल्ली, संकरण 1993

16. डॉ शंकर शेष के घरौंदा नाटक का कैथी और शिल्पी - डॉ० शिवाजी पॉवर

17.राजपथ से जनपथ नट शिल्पी शंकर शेष - डॉ० सुरेश गौतम / डॉ वीणा गौतम

18.दलित साहित्य ; एक अंतयात्रा – बजरंग बिहारी तिवारी, नवारुण प्रकाशन,सी - 303जनसत्ता अपार्टमेंट, सेक्टर-9, वसुंधरा, गाजियाबाद- 201012, प्रथम संस्करण 2015

19.ए हिस्ट्री ऑफ इगलिश लिटरेचर – कजमिया

20. आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन – एम० एन० श्री निवास, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2011

21.दलित साहित्य सौंदर्यशास्त्र- ओम प्रकाश वाल्मीकि , राधाकृष्णन प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड 7/31 , दरियागंज, नई दिल्ली-110002

22.दलित साहित्य सौंदर्यशास्त्र – शरण कुमार लिबाले, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली 110002

23.सठोत्तरी हिन्दी उपन्यासों में सामाजिक समस्याएं -डॉ०देवनारायण शर्मा, पंकज बुक्स, पड़पड़गंज,दिल्ली। प्रथम संस्करण 2016

24.आर्य संस्कृति का उत्कर्ष प्रकरण-1 – महादेवशास्त्री

25.यथार्थ यथास्थिति नहीं- रघुवीर सहाय

26.साहित्य का उदेश्य – मुंशी प्रेमचंद

27.कुछ विचार – मुंशी प्रेमचंद, सरस्वती प्रेस, बनारस , तृतीय संस्करण, 1945

28. उपन्यास और लोक जीवन – फॉक्स राइल, पीपहा प्रकाशन, प्रा० लि०, दिल्ली

29.हिन्दी नाटक – बच्चन सिंह

30.शंकर शेष का नाट्य साहित्य – वसुधा सहस्त्र बुद्धदे, संसमार्ग प्रकाशन, संस्करण 1995

31.समकालीन हिन्दी नाटक कथ्य चेतना- डॉ० चंद्रशेखर, आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली ,संस्करण 1982

32.समसामयिक नाटकों में वर्ग चेतना – देव किशन चौहान, स्वराज प्रकाशन दिल्ली

33.आजादी के बाद का भारत – विपिन चंद्र , हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निर्देशालय, दिल्ली विश्व विधालय

34.भारत नेहरू के बाद दुनिया के विशालतम लोकतंत्र का इतिहास – रामचन्द्र गुहा

---

3. कोश

1. हिन्दी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली- डॉ० अमरनाथ, राजकमल प्रकाशन, बी नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली, प्रथम छात्र संस्करण 2012

2. हिन्दी साहित्य कोश मार्ग-1 – डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, ज्ञानमंडल लि०, वाराणसी, संस्करण 2005

3. हिन्दी शब्दकोश- पाठक आर० सी०, संपादक, भार्गव आदर्श

4. पत्रिका

4. आलोचना त्रैमासिक- नामवर सिंह, अक्टूबर- दिसंबर 1976

5. कथाक्रम -संपादक शैलेन्द्र सागर, अक्टूबर-दिसंबर 2005

6. अक्षरा अंक – (आलोचना विशेषांक) अक्टूबर- दिसंबर -2000